खंड VI

दूसरों के नज़रिए से भारत

समय रेखा
यूनानी वृत्तांत
मेगस्थनीज़
चीनी वृत्तांत
फ़ाह्यान/फ़ाशियान
ह्वेनसांग/जुआनज़ांग
दक्षिण एशिया की अरब अवधारणा
अली कूफ़ी
अल-बिरूनी
इब्न बतूता
फ़ारसी वृत्तांतकारों की नज़र में भारत
औफ़ी
अब्दुर रज़्ज़ाक़

IGNOU THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

तबुला पूतिंजिरियाना/टेब्युला पैटिंजिरियाना (**Tabula Peutingeriana**) में मुज़िरिस (मुज़िरिस में ऑगस्टस का मन्दिर भी दृष्टिगोचर है); पहली शताब्दी सी ई

लेखक: Unknown

साभार: commons Image Image:TabulaPeutingeriana.jpg

स्रोत: https://commons.wikimedia.org/wiki/File:TabulaPeutingeriana Muziris.jpg.

इकाई 15 यूनानी, चीनी, अरबी तथा फ़ारसी वृत्तांत*

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 यूनानी विवरण

15.3 चीनी विवरण

15.3.1 फ़ाह्यान/फ़ाशियान

15.3.2 ह्वेनसांग/जुआनज़ांग

15.4 दक्षिण एशिया की अरब अवधारणा

15.4.1 दक्षिण एशिया की आरंभिक अरब अवधारणा

15.4.2 अली कूफ़ी और उसका *चचनामा*

15.4.3 अल-बिरुनी

15.4.4 इब्न बतूता

15.4.5 अल-उमरी और अल-क़लक़शन्दी

15.5 फरसी वृत्तांतकारों की नज़र में भारत

15.5.1 औफ़ी

15.5.2 अब्दुर रज़्ज़ाक़

15.6 सारांश

15.7 शब्दावली

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.9 संदर्भ ग्रंथ

15.10 शैक्षणिक वीडियो

15.0 उद्देश्य

यह इकाई आपको इन विषयों से परिचित कराने का उद्देश्य रखती है:

- यूनानी और चीनी यात्री जो भारत आए और जिन्होंने भारत के संबंध में अपने अनुभवों और धारणाओं को अंकित किया है,
- भारत के संबंध में यूनानी और चीनी इतिवृत्तों को किस प्रकार देखा जा सकता है और उस काल के भारतीय इतिहास की पुनर्रचना हेतु उपयोगी और प्रासंगिक स्रोतों के रूप में उन पर किस प्रकार विचार किया जा सकता है,
- भारत की अरबी अवधारणा,
- भारत आने वाले अरब यात्री, और
- भारत आने वाले फारसी-भाषी यात्री और उनके भारत-वर्णन।

15.1 प्रस्तावना

कई यात्रियों ने धर्म-दीक्षितों, तीर्थयात्रियों, राजदूतों, सैन्य-कमानदारों या सैनिकों, व्यापारियों, बस जाने की इच्छा से आए हुए आव्रजकों, आदि के रूप में भारत की यात्रा की। जिन स्थानों में वे गए और

* **डॉ. अभिषेक आनंद एवं प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**

जो कुछ उन्होंने देखा उन्होंने उनके बारे में लिखा। ये संस्मरण कई बार सहज-विश्वास तथा अतिशयोक्ति से भरे हुए हैं और कई बार इनमें भ्रामक तथा कल्पनात्मक जानकारियाँ भरी हुई हैं, जैसा कि हम आगे देखने जा रहे हैं। यदि इन्हें सावधानीपूर्वक ग्रहण किया जाए तो ये महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारियाँ उपलब्ध कराते हैं। सिकंदर के आक्रमण का किसी भी भारतीय स्रोत में उल्लेख नहीं है और हम उसके भारतीय अभियानों के इतिहास की पुनर्रचना हेतु पूरी तरह से एरियन की *इंडिके* (जो सिकंदर के अभियानों में साथ आए लोगों से प्राप्त सूचनाओं से तैयार की गई थी) जैसे यूनानी लेखनों पर निर्भर करते हैं। यूनानी-रोमन इतिवृत्त राजकुमार सैंड्रोकोप्टोस/सैंड्रोकोट्टस/सैंड्रोकोटस का उल्लेख करते हैं। उसका सिकंदर से मिलने का संदर्भ आता है जिसने 326 बी सी ई में भारत पर आक्रमण किया था। 18वीं शताब्दी में सर विलियम जोंस ने इस व्यक्ति की पहचान मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त से की थी और उसके सिंहासनारोहण की तिथि 322 बी सी ई में तय की गई। यह मौर्यों के साथ-साथ भारतीय ऐतिहासिक कालक्रम को सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। यूनानी शासकों ने मेगस्थनीज़, डिमेकस (Deimachus)/डाइमेकस (Daimachus), डियोनिसियोस (Dionysios)/डियोनिसियस (Dionysius) को अपने प्रतिनिधि-राजदूत के रूप में पाटलिपुत्र भेजा था। इसी तरह चीनी यात्रियों, जैसे फाह्यान, ह्वेनसांग, यीजिंग और मा हुआन, ने भारत के अपने अनुभवों व धारणाओं का दस्तावेज़ीकरण तथा वर्णन किया है। उन्होंने यहाँ जो देखा, पाया, समझा एवं अवलोकन किया उसके विषय में उनके वृत्तांत उन महत्वपूर्ण विवरणों तथा विशिष्टताओं को प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि इन वृत्तांतों को जस-का-तस देखने और उपयोग करने के प्रति सतर्क रहने की आवश्यकता है, ये वृत्तांत अपने आप में ऐतिहासिक स्रोतों की एक विशिष्ट श्रेणी का निर्माण करते हैं। इस प्रकार यूनानी और चीनी वृत्तांत आरंभिक भारतीय इतिहास की पुनर्रचना हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

अरब संसार के साथ भारत का संपर्क प्राचीन काल से ही रहा है। हड़प्पा सभ्यता के लोग आधुनिक बहरीन के साथ व्यापारिक संबंधों को साझा करते थे, जिसे दिलमुन/दिल्मन सभ्यता का केंद्र माना जाता है। ***गेनीज़ा* (*Geniza*) दस्तावेज़ों** की खोज दक्षिण एशिया के साथ आरंभिक अरब संपर्कों के कई पहलुओं को सामने लाई है। व्यापक भौगोलिक ज्ञान और नौवहन की दक्षता अरबों को भारतीय समुद्र-तटों पर ले आई थी। इस प्रकार प्राथमिक रूप से अरबों और भारतीयों का संपर्क इन व्यापारिक नाविकों के माध्यम से हुआ था। समुद्री यात्राओं से शुरू हुए इस संपर्क ने दोनों सभ्यताओं के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान को और बढ़ाया। अरब व्यापारियों के वृत्तांत सामान्य रूप से समुद्र-तटीय शहरों में तथा विशेष रूप से मालाबार (मोपला और नवायत; जिनकी अभी भी इस क्षेत्र में प्रभावी मौजूदगी है) और गुजरात में अरब और मुस्लिम उपनिवेशों की उपस्थिति का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार सिंध और मुल्तान में भी अरब संपर्कों तथा दरवेशों के माध्यम से इस्लामीकरण की प्रक्रिया का संकेत करते हैं।

यह इकाई यूनानियों, चीनी, अरबी तथा ईरानी व्यापारियों, यात्रियों, दार्शनिकों, विद्वानों, नाविकों और भूगोलवेत्ताओं की भारत-संबंधी अवधारणा पर दृष्टि डालती है।

15.2 यूनानी वृत्तांत

यूनानी और रोमन इतिवृत्त हिंद महासागर के व्यापार के संबंध में भी महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध कराते हैं। ये कई भारतीय बंदरगाहों तथा पहली व दूसरी शताब्दी सी ई में भारत और रोमन साम्राज्य के बीच व्यापार में शामिल वस्तुओं का संकेत करते हैं। मिस्र में रहने वाले एक गुमनाम यूनानी लेखक की साहित्यिक कृति *पेरिप्लस ऑफ़ द एरिथ्रीयन सी* (लगभग 80-115 सी ई) 80 सी ई के लगभग भारतीय तट-रेखा पर उसके द्वारा की गई यात्राओं पर आधारित थी। लाल सागर, फ़ारस की खाड़ी तथा हिंद महासागर में रोमन व्यापार पर प्रकाश डालते हुए वह भारतीय वाणिज्यिक बंदरगाहों के विषय में चर्चा करता है। अन्य यूनानी विद्वान टॉलेमी ने *ज्योग्रफ़ी* (*Geography*; लगभग 150 सी ई) की रचना की जो दूसरी शताब्दी सी ई में प्राचीन भूगोल और वाणिज्य के संबंध में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारियाँ प्रदान करती है। इस साहित्यिक कृति में भारत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

स्ट्रैबो, एरियन, प्लिनी द एल्डर, इत्यादि के आरंभिक यूनानी और लातीनी (Latin) विवरण हिंद महासागर के व्यापार के संबंध में जानकारियाँ उपलब्ध कराते हैं। प्लिनी एक रोमन प्रकृतिवादी था। वह प्रकृति का दार्शनिक और आरंभिक रोमन साम्राज्य में नौसेना और थल सेना, दोनों, का सेनानायक रहा था। उसने *नैचुरैलिस हिस्टॉरिया* (*नैचुरल हिस्ट्री*) की लातीनी भाषा में प्रथम शताब्दी सी ई के

लगभग रचना की थी। कई अन्य विषयों के अलावा यह प्रबंध-ग्रंथ हमें भारत और इटली के बीच व्यापार के संबंध में जानकारी देता है।

यह अवश्य याद रखा जाना चाहिए कि भारत के संबंध में अधिकांश यूनानी लेखन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित हैं जिसका परिणाम भ्रामक जानकारियों और विरोधाभासी तत्वों में निकलता है। इसलिए इनका ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग करते हुए सावधान रहने की आवश्यकता है। यूनानी भारतीय भाषाओं और रीतियों के प्रति अनभिज्ञ थे और उनके विवरण कल्पना और अविश्वसनीय जानकारियों से भरे हुए हैं।

मेगस्थनीज़

सिकंदर द्वारा पीछे छोड़ी गई सैन्य वाहिनियों के यूनानी सेनानायक सेल्यूकोस (या सेल्यूकस) निकेटर ने एशिया में मेसीडोनियाई (Macedonian) साम्राज्य के अंतर्गत व उसके नियंत्रण में रहे अधिकांश प्रांतों पर प्रभुत्व पा लिया और इन पर शासन किया। ऐसा कहा जाता है कि उसने प्रथम मौर्य राजा चंद्रगुप्त का युद्ध के मैदान में 305 बी सी ई में सामना किया था। यद्यपि उन दोनों के बीच समझौता हुआ और वैवाहिक संधि भी हुई। यह स्पष्ट नहीं है कि किसने किसकी पुत्री से विवाह किया किंतु हमें यह पता चलता है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस को 500 हाथी उपहार में दिए तथा चन्द्रगुप्त ने बदले में सिंधु के पार के क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त किया।

मेगस्थनीज़ पाटलिपुत्र के मौर्य राजदरबार में सेल्यूकस का राजदूत था जहाँ वह कई वर्षों तक रहा। उसने व्यापक रूप से यात्राएँ भी कीं। उसका संस्मरण अपनी पूर्णता में उपलब्ध नहीं है। इसके उद्धरण बाद के यूनानी इतिवृत्तकारों की रचनाओं में उद्धृत किए गए हैं। इस प्रकार यह केवल बिखरे हुए रूप में उपलब्ध है। उसका यह विवरण *इंडिका* के नाम से जाना जाता है। यह मौर्य प्रशासन, समाज और अर्थव्यवस्था को जानने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

पाटलिपुत्र के संबंध में मेगस्थनीज़ का विवरण

मेगस्थनीज़ पुरातात्विक खोजों की पुष्टि करता है कि उसके समय में कई नगर अस्तित्व में थे किंतु पाटलिपुत्र (जिसे वह *पालिबोथरा* कहता है) सर्वाधिक विशिष्ट था। यूनानी पारिभाषिक शब्द *पालिबोथरा* का तात्पर्य कई द्वार वाले नगर से है।

बाएं: पुरातात्विक उत्खनन द्वारा उजागर पाटलिपुत्र के कुम्रहार नामक स्थल पर स्तंभयुक्त कक्ष/ सभामण्डप के मौर्य अवशेष

साभार: ए.एस.आई.ई.सी. द्वारा पुरातात्विक उत्खनन, 1912-13

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Mauryan_ ruins_of _ pillared_hall_at_ Kumrahar_site_of_Pataliputra_ASIEC_1912-13.jpg

वह उल्लेख करता है कि पाटलिपुत्र 64 द्वारों से घिरा हुआ तथा संरक्षित था। उसने यह भी अंकित किया है कि यह नगर एक गहरी खाई और 570 बुर्जों (towers) वाली लकड़ी की दीवार से घिरा हुआ था। उत्खनन द्वारा इस स्थल से जो अवशेष उजागर हुए हैं वे हैंः खाई, लकड़ी की घेराबंदी, लकड़ी के घर। इसके अतिरिक्त वह पाटलिपुत्र का यथातथ्य परिमाप देता हैः लंबाई में 9.33 मील और चौड़ाई में 1.75 मील। यह आकार आधुनिक पटना से मेल खाता है क्योंकि पटना मुख्यतः लंबाई में फैला हुआ है और आनुपातिक रूप से इसकी चौड़ाई कम है।

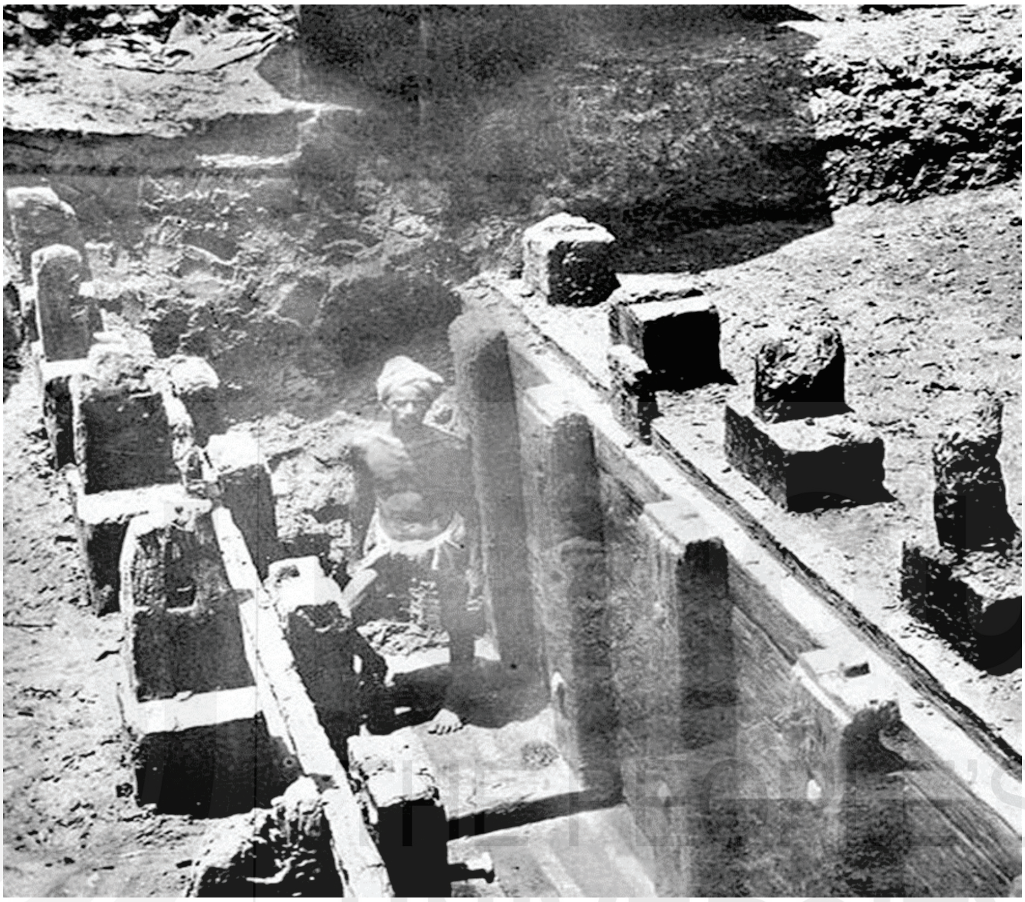

दाएँः पाटलिपुत्र के बुलंदीबाग़ पुरातात्विक स्थल में लकड़ी से निर्मित दुर्गीकरण के मौर्य अवशेष
साभारः ए.एस.आई.ई.सी.,1912-13
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mauryan_remains_of_wooden_palissade_at_Bulandi_Bagh_site_of_Pataliputra_ASIEC_1912-13.jpg

प्रशासन के संबंध में मेगस्थनीज़ का विवरण

मेगस्थनीज़ की *इंडिका* कई तथ्यों पर कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* से समानता रखती है और इसके संदर्भों की कौटिल्य (जिसे चाणक्य/*ब्राह्मण* विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता था) द्वारा भी पुष्टि होती है। *इंडिका* और *अर्थशास्त्र* दोनों ही चंद्रगुप्त के अधीन एक विस्तृत और जटिल प्रशासनिक व्यवस्था को प्रस्तुत करते हैं। मेगस्थनीज़ हमें यह बताता है कि राजा की सहायता करने के लिए मंत्रियों और अधिकारियों की परिषद् होती थी जिसमें ऐसे लोग शामिल होते थे जो अपनी अंतर्दृष्टि और ज्ञान के लिए विख्यात होते थे। उच्च श्रेणी के पदाधिकारी इन पार्षदों के बीच से चुने जाते थे किंतु उनकी सलाह राजा पर बाध्यकारी नहीं थी। किसी विषय पर उसका निर्णय ही अंतिम माना जाता था।

मेगस्थनीज़ ने सामान्य रूप से मौर्य प्रशासन और विशेष रुप से राजधानी-नगर पाटलिपुत्र के प्रशासन के विषय में लिखा है। वह पाटलिपुत्र को पाँच सदस्यों वाली छः समितियों के माध्यम से प्रशासित किए जाने का उल्लेख करता है। इन समितियों के कार्यों में निम्नलिखित शामिल थेः स्वच्छता, जन्म और मृत्यु का पंजीकरण, माप-तोल का विनियमन तथा विदेशियों की देखभाल।

सेना के संबंध में मेगस्थनीज़ का विवरण

यह ऐतिहासिक रूप से ज्ञात है कि मौर्यों ने प्रथम भारतीय साम्राज्य की स्थापना की और केवल सुदूर दक्षिण को छोड़कर लगभग संपूर्ण उपमहाद्वीप में राजनीतिक नियंत्रण प्राप्त किया। वे इस उपलब्धि को एक विशाल सेना की व्यवस्था के माध्यम से हासिल कर पाए थे। कौटिल्य ने वनों (उसके *अर्थशास्त्र* में इन्हें *वन, अरण्य/आरण्य, अटवी* और *कांतार* कहकर पुकारा गया है) के महत्व को रेखांकित किया है क्योंकि ये युद्ध के लिए हाथियों की आपूर्ति करते थे। वस्तुतः वह वनों को इन श्रेणियों में बाँटता हैः

1) सामग्री वन (material forests) जो शहद, लकड़ी, यज्ञों के लिए पूजन-सामग्री, पुष्पों, फलों, कंदमूलों, विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों, वन्य-अनाज, इत्यादि की आपूर्ति करते थे।

2) *हस्ति* वन जो सैन्य उद्देश्यों के लिए हाथियों की आपूर्ति करने के प्रमुख स्रोत थे।

कौटिल्य कहता है कि एक विशेष अधिकारी या निरीक्षक, जिसे *विवीताध्यक्ष* कहा जाता था, को द्रव्य तथा *हस्ति* वनों के निवासियों की जीविका को अवश्य सुरक्षित रखना चाहिए। मौर्यों के सैन्य बलों के संदर्भ में मेगस्थनीज़ मौर्य सेना के संख्या-बल को चार लाख बताता है। इतिहासकारों का मत है कि इस आँकड़े में यद्यपि अतिशयोक्ति का अंश नज़र आता है किंतु मौर्य राज्य की सैन्य शक्ति और भौतिक बल में हुए अत्यधिक उभार, जिसने मौर्य सम्राटों की प्रतिष्ठा और भव्यता को अत्यधिक बढ़ा दिया था, से इनकार नहीं किया जा सकता है।

मेगस्थनीज़ के अनुसार इन सैन्य-बलों का प्रबंधन छह प्रभागों या समितियों में बँटे हुए अधिकारियों के एक मंडल द्वारा किया जाता था जिसमें से प्रत्येक राजा के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह थाः पैदल सेना; नौसेना; घुड़सवार सेना; परिवहन; रथ और हाथी।

व्यापार तथा वाणिज्य के संबंध में मेगस्थनीज़ का विवरण

इतने विशाल राज्य की स्थापना राज्य के प्रयासों से ग्रामीण निवास-क्षेत्रों के विस्तार के माध्यम से हुई थी। इसके साथ ही व्यापार में वृद्धि, जिसका कारण एक मज़बूत यातायात तथा संचार व्यवस्था थी, की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका थी। मेगस्थनीज़ उस मार्ग की चर्चा करता है जो उत्तर-पश्चिमी प्रांतों को पाटलिपुत्र के साथ जोड़ता था और पाटलिपुत्र सहसराम/सासाराम (बिहार में), वर्तमान मिर्ज़ापुर क्षेत्र (उत्तर प्रदेश) तथा मध्य भारत के साथ जुड़ा हुआ था।

इसके अतिरिक्त व्यापार तथा उद्योगों पर मौर्यों का कठोर नियंत्रण था। यह इस हेतु नियुक्त प्रभारी अधिकारियों से भी स्पष्ट होता है। कौटिल्य तथा मेगस्थनीज़ दोनों ही वाणिज्य के नियंत्रक तथा प्रबंधक का उल्लेख *पण्याध्यक्ष* के रूप में करते हैं। उसके कर्तव्यों में शामिल था विनिमय होने वाली वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण और निरीक्षण तथा अधिशेष वस्तुओं का प्रबंधन और वितरण।

मौर्य काल में उत्तर और दक्षिण के बीच व्यापारिक संपर्क का संकेत भी मेगस्थनीज़ करता है। वह पांड्य अधिक्षेत्र का उल्लेख करता है और यहाँ एक महिला का शासन (जो पांड्य समाज में मातृसत्तात्मक व्यवस्था का संकेत करता है) होने की जानकारी देता है और जो मोतियों के लिए विख्यात था। अशोक के अभिलेख भी उसके साम्राज्य के बाहर के राजवंशों के रूप में पांड्यों, चोलों और चेरों (उसके अभिलेखों में प्रयुक्त शब्द केरलपुत्र है) और सत्यपुत्रों/सतियपुत्रों (इनकी पहचान स्पष्ट नहीं है) का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार मेगस्थनीज़ के इस संदर्भ पर विश्वास किया जा सकता है।

जातियों तथा दास प्रथा पर मेगस्थनीज़ का विवरण

वह सात जातियों का विवरण देता हैः 1) दार्शनिक/विद्वान; 2) निरीक्षक; 3) सभासद; 4) सैन्य वर्ग; 5) शिल्पकार; 6) कृषक; 7) चरवाहे/पशुपालक

यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट और प्रकट है कि उसने व्यवसायिक समूहों को जाति के रूप में समझ लिया था। यहाँ हम कौटिल्य व उसके बीच विरोधाभास देखते हैं। कौटिल्य ने कई स्थानों पर अपने ग्रंथ में *चतुर्वर्ण* व्यवस्था और चार ***वर्णों*** के कर्तव्यों और कार्यों पर रोशनी डाली है। ऐसा करते हुए वह अपने समय के पूर्व के और अपने समय में संहिताबद्ध किए गए ***शास्त्रों*** के निर्देशात्मक ढाँचे की सहायता लेता है।

इन दो लेखकों के बीच भिन्नता का एक अन्य विषय मौर्य काल में दासता है जो विवाद और अनिश्चय का मुद्दा बन गया है। मेगस्थनीज़ के अनुसार यहाँ कोई दास नहीं थे। दूसरी ओर कौटिल्य दास प्रथा तथा दासत्व से मुक्ति के संदर्भ में विस्तृत कानूनों की व्याख्या करता है, उदाहरण के लिए, दासों का विनियमन करने वाले नियम। इतिहासकार यह अनुमान लगाते हैं कि अधिकांशतः *दास* 'शूद्र' थे जो श्रम-शक्ति का बड़ा हिस्सा उपलब्ध कराते थे। यद्यपि अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में उच्च वर्णों के सदस्य भी स्वयं को गिरवी रख देते थे। उनके लिए कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त शब्द *अहितक* (*Ahitaka*) है। यद्यपि वह उन्हें स्वतंत्र प्रकृति का बताता है, संभवतः यह उसकी ग़ैर-आर्य दासों/'शूद्र' दासों से भिन्न *आर्य* दासों के हितों की सुरक्षा करने की इच्छा या चिंता रही होगी।

धर्म के संबंध में मेगस्थनीज़ का विवरण

मेगस्थनीज़ धार्मिक परिदृश्य पर भी कुछ प्रकाश डालता है। वह शिव का उल्लेख डायोनिसस के रूप में करता है। *अर्थशास्त्र* में हम शिव और संकर्षण जैसे देवताओं का उल्लेख पाते हैं जो बाद के समय में हिंदू देवसमूह में केंद्रीय देवताओं के रूप में उदित हुए थे। मेगस्थनीज़ मथुरा क्षेत्र में हेराकल्स (Herakles) की उपासना का भी उल्लेख करता है। इतिहासकार इस चरित्र की पहचान बहरूपी कृष्ण से करते हैं जो पौराणिक धर्म में गुप्त काल से लोकप्रिय हुए थे।

15.3 चीनी वृत्तांत

कई चीनी भिक्षुओं तथा यात्रियों ने स्थल मार्गों से भारत की लंबी और साहसिक यात्राएँ कीं। वे मरुस्थलों, पर्वतों, पठारों को पार करते हुए यहाँ तक पहुँचे थे। वे बौद्ध धर्म-ग्रंथों की प्रामाणिक पाँडुलिपियों को एकत्र करने व अपने साथ ले जाने के लिए और बौद्ध धर्म के विषय में अध्ययन तथा शिक्षा प्राप्त करने हेतु बौद्ध *मठों,* महत्वपूर्ण बौद्ध तीर्थस्थानों तथा शिक्षण-केंद्रों को देखने और वहाँ भ्रमण करने आए थे। उन्हें चीन में समर्पित बौद्ध अनुयायियों और भक्तों के सम्मुख बुद्ध के जीवन की घटनाओं तथा उनसे संबंधित स्थानों का वर्णन प्रस्तुत करने की उनकी अभिलाषा ने भी प्रेरित किया था। इस प्रकार इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उस समय के भारतीय लोगों की आम जीवनशैली की साधारण जानकारी का इन यात्रा-वृत्तांतों में पर्याप्त रूप से संकेत नहीं मिलता है। इनके आख्यानों से इतिहास को ढूँढ निकालने की ज़रूरत पड़ती है।

भारत के विषय में अपने पर्यवेक्षणों को लेखबद्ध करने वाले चीनी यात्रियों में फ़ाह्यान, ह्वेनसांग तथा यिजिंग (Yijing; इत्सिंग/इचिंग; 638-713 सी ई) और मा हुआन (हिंद महासागर में यात्रा; 1405-1433 सी ई) के अनुभव अपनी संपूर्णता में हमें उपलब्ध हैं।

इस इकाई में हम आपका परिचय इनमें से पहले दो से कराएँगे। ये दोनों ही अपनी यात्रा का ऐतिहासिक रूप से प्रासंगिक विवरण प्रस्तुत करते हैं जो न केवल इस काल में बौद्ध धर्म पर पर्याप्त प्रकाश डालता है, विशेष रूप से *महायान* पंथ (लगभग 200 बी सी ई से 300 सी ई का काल *महायान* के उदय से जोड़ा जाता है) पर, जिसकी पुष्टि बौद्ध *मठ* स्थलों से प्राप्त अभिलेखीय तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है, साथ ही भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य विभिन्न पहलुओं के विषय में भी जानकारी देते हैं। यद्यपि इनमें ऐसी जानकारियाँ भी हैं जिनका पुरातत्विक रूप से समर्थन कर पाना मुश्किल है। उदाहरण के लिए, ये ऐसे स्थानों पर अशोक के अभिलेखयुक्त स्तंभों का संकेत करते हैं जहाँ हमें आज कोई भी ऐसे अभिलेख नहीं मिले हैं। यदि उनके वर्णन को सही माना जाए तो हमारे मस्तिष्क-पटल पर ऐसी छवि निर्मित होती है कि अशोक ने बड़ी संख्या में अभिलेखों को उत्कीर्ण कराए जाने का आदेश दिया था किंतु हमारे समय में उनमें से केवल कुछ ही शेष रह गए हैं। उनके आख्यानों के अनुसार अशोक के अन्य भी बहुत से अभिलेख थे जिन्हें उसने अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में उत्कीर्ण करवाया था। इनकी निश्चित संख्या का स्पष्ट विवरण नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इनमें से कई नष्ट हो गए हैं।

ये दोनों चीनी यात्री *महायान* और ग़ैर-*महायान* बौद्ध अनुयायियों का एक ही *मठ* में समरूप भिक्षु समुदायों के रूप में रहने का उल्लेख करते हैं। बौद्ध *संघ* के *महायान* और *हीनयान* में विभाजित हो जाने के संदर्भ में यह जानकारी दिलचस्प और भ्रामक, दोनों, प्रतीत होती है। हालिया शोध यह संकेत करते हैं कि हमें विभाजन (*संघभेद*) के इस विचार पर फिर से सोचने की आवश्यकता है। हेन्ज़ बेचर्ट

(1982) का तर्क है कि बौद्ध धर्म में विभाजन की धारणा और इसके प्रभाव को ईसाई धर्म के इतिहास में हुए विभाजन की परंपरा और विचार से अलग करते हुए देखा जाना चाहिए। वह पुष्टि करते हैं कि बौद्ध धर्म में यह *मठ*-संबंधी अनुशासन का विषय था न कि सैद्धांतिक या श्रद्धा-संबंधी व्यवहारों का विषय। *महायान* और *हीनयान* वस्तुतः विचारों और शिक्षाओं की दो धाराएँ थीं जो *संघ* के भीतर उन अनुयायियों के बीच उभरीं जो वहाँ साथ निवास किया करते थे। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि इन दो मतों का उदय, कम से कम शुरुआती तौर पर, किसी प्रकार के *संघ*-विभाजन का कारण नहीं था।

15.3.1 फ़ाह्यान/फ़ाशियान

चीनी बौद्ध-विद्वान व तीर्थयात्री फ़ाह्यान/फ़ाशियान/फ़ाहियान (लगभग 399-414 सी ई) गुप्त शासक चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत की यात्रा पर आया था। उसने बौद्ध पांडुलिपियों को एकत्र किया और बौद्ध *मठों* में अध्ययन किया। ह्वेनसांग के विपरीत उसकी यात्रा केवल उत्तरी और मध्य भारत तक सीमित थी, यद्यपि वह उत्तर-पश्चिमी सीमांत से गंगा घाटी की ओर बढ़ा और दक्षिण की ओर जाते हुए बंगाल की खाड़ी में स्थित पूरब के तटीय बंदरगाह ताम्रलिप्ति/ताम्रलिप्त (आधुनिक पश्चिम बंगाल का मिदनापुर जिला) तक गया। यहाँ से समुद्री मार्ग द्वारा वह श्रीलंका और आगे दक्षिण-पूर्व एशिया तक जाने का उल्लेख करता है जहाँ से वह चीन को लौट गया था[1]। ऐसा कहा जाता है कि उसने अपना शेष जीवन भारत से संग्रहित प्रबंध-ग्रंथों के अनुवाद में बिताया। उसने अपने यात्रा-वृत्तांत *फ़ो-कुओ-की* ('बौद्ध साम्राज्यों का एक विवरण') शीर्षक से लिखा। यह ग्रंथ चंद्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख नहीं करता है जो उसकी यात्रा के दौरान शासन कर रहा था किंतु इसमें भारतीय लोगों के जीवन का वर्णन समाहित है। वह गुप्त सम्राटों के शासनकाल के दौरान सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करता है। उसके द्वारा ताम्रलिप्ति का उल्लेख पूर्वी तट पर एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र के रूप में है किया गया है। वह भारत को चीन से जोड़ने वाले समुद्री मार्ग के ख़तरों के प्रति सतर्क रहने का उल्लेख भी करता है।

बौद्ध धर्म के संबंध में फ़ाह्यान का विवरण

बौद्ध धर्म तब *महायान* व *हीनयान* में बंट चुका था और ये दोनों विचारधाराएँ कई उप-मतों में विभाजित थीं। वह निम्नलिखित स्थानों का उल्लेख *हीनयान* के प्रभाव वाले स्थानों के रूप में करता हैः गांधार (आधुनिक उत्तर-पश्चिम पाकिस्तान और पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान); उदयन (Udyana) (वर्तमान में पाकिस्तान का स्वात ज़िला); बन्नू (पाकिस्तान में कुर्रम नदी के तट पर स्थित); कश्मीर घाटी; दारदा (Darada) (कश्मीर घाटी के उत्तर में सिंधु नदी के साथ स्थित गिलगित क्षेत्र); लोब नोर (आधुनिक चीन में लोप नूर/लोप नोर); कन्नौज (उत्तर प्रदेश)।

महायान शाखा भी लोकप्रिय थी। वह इन स्थानों पर *महायान* भिक्षुओं से मिलने का उल्लेख करता हैः भीड़ा (वर्तमान पाकिस्तान के पंजाब प्रांत का भेरा); मथुरा (उत्तर प्रदेश) और पाटलिपुत्र।

वह बताता है कि खोतान (रेशम मार्ग की एक उप-शाखा पर स्थित चीन का बौद्ध राज्य जिस पर शकों ने शासन किया था) के सभी भिक्षु *महायानी* थे। अब यह ऐतिहासिक रूप से ज्ञात है कि पाँचवी-छठी शताब्दी सी ई में *महायान* उत्तरोत्तर तांत्रिक धर्म के प्रभाव में आने लगा था जिसका परिणाम आने वाली शताब्दियों में *वज्रयान* बौद्ध-मत, जो कई चमत्कारिक अनुष्ठानों पर बल देता था, के उदय के रूप में निकला। बाद के काल में व्यापार में पतन के साथ ही व्यापारी वर्ग से मिलने वाले संरक्षण और समर्थन समाप्त हो जाने से अब बौद्ध *मठ* और *संघ* अपने प्रबंधन के लिए राजाओं द्वारा दिए जाने वाले भूमि और गाँवों के अनुदानों पर निर्भर थे। उदाहरण के लिए, बौद्ध शिक्षा तथा संस्कृति के प्रमुख केंद्र नालंदा को 200 गाँवों का राजस्व प्रदान किया गया था।

अशोक के संबंध में फ़ाह्यान का विवरण

अशोक के समय से कई सदियों बाद आने वाले इस यात्री ने अशोक की विपुल मानव-सेवा का उल्लेख किया है। इस कार्य को उचित ही और विश्वसनीय रूप से इतिहास लेखन कहा जा सकता है क्योंकि वह अतीत के एक विषय को याद और उसकी पुनः प्रस्तुति करता है। इसका तात्पर्य है कि उसने

[1] भिक्षु जो उस काल में भारत से चीन मध्य एशिया के मार्ग से जाते थे वे कारवाँ व्यापारियों के मार्ग का अनुसरण करते थे।

अवश्य ही मौर्य स्रोतों की छानबीन और अध्ययन किया होगा। जो इतिहासकार मौर्य साम्राज्य के क्रमिक और स्थायी विखंडन और पतन के लिए उत्तरदायी अशोक की अहिंसा और युद्ध-विरोधी नीति के आर्थिक परिणामों का उल्लेख करते हैं वे अपना तर्क अशोक के भव्य परोपकार के इस विवरण से ग्रहण करते हैं। वे दृढ़तापूर्वक यह कहते हैं कि कलिंग की पराजय के बाद उसने कोई युद्ध नहीं लड़ा और उसकी विशाल सेना का उपयोग परेड और सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए ही होता था जिसका परिणाम विशाल सेना के मात्र आडंबर बन जाने और इसकी व्यवस्था अत्यंत खर्चीली हो जाने में निकला। इतिहासकारों द्वारा यह भी तर्क दिया जाता है कि अपनी प्रजा के प्रति पैतृक प्रेम और चिंता के प्रमुख चिह्न के रूप में उसके द्वारा धर्मार्थ किए जाने वाले अत्यधिक व्यय ने राज्य के कोष को संकुचित और खाली कर दिया था। यह भी क्षोभ प्रकट किया जाता है कि बौद्ध अनुयायियों पर उसके द्वारा खुले दिल से किए गए अनुग्रह तथा दान के कृत्य उसके लिए और राज्य के लिए भी विनाशकारी सिद्ध हुए। यह भी कहा जाता है कि अपने अंतिम दिनों में वह ऐसी दरिद्रता को प्राप्त हुआ कि उसके पास एक आधे आम के अतिरिक्त कुछ भी शेष न था, यद्यपि यह कथन/तथ्य अतिशयोक्ति प्रतीत होता है।

अशोक के महल के अवशेषों का मुआयना करते फ़ाह्यान का चित्रण

साभारः हचिंसन्स स्टोरी ऑफ़ द नेशन्स

स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki File:Fa_ Hien_ at_ the_ ruins _of_Ashoka_palace.jpg

सामंतवाद के संबंध में फ़ाह्यान का विवरण

पुरोहितों तथा मंदिरों और बाद के समय में राजकीय अधिकारियों को भूमि-अनुदान दिए जाने ने गुप्त काल से सामंतवाद और अर्द्धदासत्व के उद्भव को जन्म दिया। जो इतिहासकार इसे भारतीय

सामंतवाद के युग के रूप में देखते हैं वे व्यापार के पतन और मुद्रा के रूप में धन की उपलब्धता में गिरावट के ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में फ़ाह्यान द्वारा इस काल में विनिमय के साधन के रूप में *कौड़ियों* के आम प्रचलन के उल्लेख को उद्धृत करते हैं। वह हमें ब्राह्मण पुरोहितों के *मठों* का घरों, खेतों तथा उद्यानों से सुसज्जित होने का उल्लेख भी करता है। उसके अनुसार उन्हें खेत कृषि करने हेतु खेतिहरों और पशुओं के साथ दिए जाते थे। हम इसका समर्थन उत्तर भारत से प्राप्त समकालीन अभिलेखित साक्ष्यों में नहीं पाते हैं, यद्यपि वर्तमान समय में गुजरात, मध्य भारत और ओडिशा से प्राप्त होने वाले छठी शताब्दी सी ई के अभिलेखों में खेतिहरों की आवश्यकता का तथा बलपूर्वक उन्हें वहाँ बनाए रखने के निर्देश भी देखते हैं, जब भूमि को किसी अन्य को दान किया जाता था तब भी। भूमि के साथ-साथ उस पर काम करने वालों के हस्तांतरण की यह प्रक्रिया प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिक प्रचलन में आई थी जिसने स्वतंत्र किसानों की गतिशीलता को सीमित या बाधित किया और उन्हें अर्द्धदास या कृषिदास की स्थिति में पहुँचा दिया। राजकीय भूमि पर कार्य करने वाले खेतिहरों को अपने उत्पाद का एक हिस्सा राजकोष को सौंपना पड़ता था।

मौर्य शासकों के विपरीत गुप्त राजाओं के पास विशाल पेशेवर सेना होने का पता नहीं चलता है। *प्रयाग प्रशस्ति*, जो समुद्रगुप्त की *दिग्विजय* के संबंध में उसकी प्रशंसा और उसका महिमामंडन करती है, उसकी सैन्य व्यवस्था के विषय में कुछ भी नहीं बताती है। फ़ाह्यान भी गुप्त सेना की संख्या-बल के विषय में कुछ नहीं बताता है। काफ़ी हद तक यह संभव नज़र आता है कि सामंत, जो कम से कम इस विशाल साम्राज्य के सीमांतों पर व्यापक सत्ता धारण करते थे, के अधीनस्थ उन सैनिकों को उपलब्ध कराते थे जो गुप्त राजाओं की सेना का बड़ा हिस्सा निर्मित करते थे। इसके अलावा एक समय सैन्य व्यवस्था के अनिवार्य अंग समझे जाने वाले घोड़ों और हाथियों पर गुप्त शासकों का एकाधिकार नहीं था जैसा कि मौर्य काल में था। संभवतः इसका परिणाम सामंती भू-स्वामियों/सामंत मंडलेश्वरों के ऊपर निर्भरता में निकला होगा।

अस्पृश्यों के संदर्भ में संबंध में फ़ाह्यान का विवरण

वह ऐसे लोगों की ओर संकेत करता है जो सामान्यतः खुशहाल और संतुष्ट थे तथा शांति और सम्पन्नता से जीवन यापन कर रहे थे। वह हमें यह बताता है कि उन्हें अपने परिवारों का पंजीकरण नहीं कराना पड़ता था और दंडाधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं होना पड़ता था। यह एक काल्पनिक तथा आदर्श वर्णन प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त उसके आख्यान में सामाजिक तनाव को देखा जा सकता है। वह अस्पृश्यों, विशेष रूप से '***चांडालों***', के कष्टों पर रोशनी डालता है। उसकी यात्रा के काल में अस्पृश्य वर्ग पूर्ण रूप से बहिष्कृत थे। फ़ाह्यान लिखता है कि *'चांडाल'* नगर या बाज़ार क्षेत्र में एक लकड़ी के टुकड़े को रगड़ते हुए या ताली बजाते हुए ही प्रवेश कर सकते थे ताकि उनके आने की पहले ही सूचना मिल जाए और लोग उनकी उपस्थिति के प्रति सतर्क हो जाएं और उनकी निकटता से बच सकें। यदि वे अत्यंत निकट आ जाते थे तो उच्च जाति के व्यक्ति को शुद्धीकरण हेतु स्नान का अनुष्ठान करना पड़ता था। अन्य समकालीन ग्रंथ भी सामान्य रूप से अस्पृश्यों तथा विशेष रूप से '*चांडालों*' को इसी नकारात्मक दृष्टि से देखने एवं उनकी अधोगति का चित्रण करते हैं।

15.3.2 ह्वेनसांग/ज़ुआनज़ांग

ऐतिहासिक शोध के अनुसार ह्वेनसांग/ह्युन सांग/ज़ुआनज़ांग ने अपने गृहदेश को 629 सी ई में छोड़ा था। भारतीय उपमहाद्वीप में विस्तृत भ्रमण करते हुए उसने लगभग 15 वर्ष वर्ष गुज़ारे और यह कहा जाता है कि 645 सी ई में वह वह चीन लौट गया। वह नालंदा विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म के विषय में अध्ययन करने आया था। उसने हर्ष की राज-सभा में कई वर्ष व्यतीत किए और हर्ष के काल की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों तथा धार्मिक पंथों का उसने वर्णन किया है। इतिहासकारों का यह विश्वास है कि हर्ष बौद्ध धर्म का एक उत्साही समर्थक बन गया था और उसने बौद्ध *संघ* को उदारतापूर्वक अनुदान प्रदान किए। उस काल में हर्ष के राजदरबार और उसके जीवन का ह्वेनसांग द्वारा जीवंत चित्रण किया गया है और फ़ाह्यान की तुलना में उसका आख्यान अधिक विस्तृत और तथ्यात्मक रूप से संपन्न है और प्रामाणिक भी।

प्राचीन भारतीय साहित्य कई नगरों का उल्लेख करता है जिनकी पहचान 19वीं शताब्दी के औपनिवेशिक खोजकर्ताओं और अन्वेषकों द्वारा की गई थी। सर अलेक्ज़ेंडर कनिंघम ऐसे ही एक ब्रिटिश पुरातत्वविद थे जिनका इस संबंध में दिया गया योगदान महत्वपूर्ण और मौलिक रहा है। वह 1871 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक बने। उन्होंने क्लासिकीय (classical) यूनानी-रोमन विवरणों और चीनी इतिवृत्तकारों – ह्वेनसांग और फ़ाह्यान – के विवरणों से नगरों के विषय में जानकारियों को इकट्ठा किया। उन्होंने प्रारंभिक रूप से प्राचीन तक्षशिला की पहचान माणिक्यल/मन्कियल/मानिकियाल (पाकिस्तान में रावलपिंडी के निकट स्थित पोठवार/पोठोहार पठार पर स्थित एक गाँव) से की थी। एक प्रसिद्ध *स्तूप* भी वहाँ खोजा गया था। किंतु शाह ढेरी/शाद डेराई में उनकी पड़ताल ने उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु विवश किया कि यही प्राचीन तक्षशिला था।

◀ **भारत की ओर यात्रा करते ज़ुआनज़ांग/ ह्वेनसांग का चित्रण टोक्यो राष्ट्रीय संग्रहालय जापान में संरक्षित चित्र**
साभार: Alexcn
स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons. wikimedia. org/wiki/File:Xuanzang_w.jpg

बाएँ: तक्षशिला (पाकिस्तान) में पुरातात्विक अवशेष
स्रोत: विकिमिडिया कॉमन्स; Wikimedia Commons (https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Taxila2.jpg
दाएँ: कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश) में एक मठ के पुरातात्विक अवशेष
साभार: Vinod26Jan
स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki File: Ghoshitaram_ monastery _ in_Kosambi.jpg

कनिंघम अपनी नई खोज के संबंध में लिखते हैं:

> सुप्रसिद्ध नगर तक्षशिला की स्थिति अब तक अज्ञात ही रही थी, अंशतः प्लिनी द्वारा त्रुटिपूर्ण रूप से बताई गई दूरी के कारण और अंशतः शाह ढेरी के निकट स्थित विपुल अवशेषों के संबंध में जानकारी प्राप्त नहीं हो पाने के कारण ... किंतु चीनी तीर्थयात्रियों के यात्रा-विवरणों में इसे सिंधु के पूर्व में तीन दिनों की दूरी पर स्थित बताया गया था ... ह्वेनसांग, जो चीन की ओर लौट रहा था, सामानों से लदे हुए एक हाथी के साथ तक्षशिला से सिंधु नदी तक अपनी यात्रा का समय तीन दिन बताता है ... इसे अवश्य ही आधुनिक समय में भी इतनी ही दूरी पर होना चाहिए और परिणामतः इस नगर का स्थान काला-का-सराय के आसपास के क्षेत्र में कहीं ढूँढा जाना चाहिए ... इस पहचान की पुष्टि ह्वेनसांग इसके बाद जिन दो अगले स्थानों पर गया उनकी दूरियों से भी होती है, इन दोनों का वर्णन वर्तमान समय में हसन अब्दाल (Hasan Abdal)[2] और बावटी पिंड (Baoti Pind)[3] का संकेत करता है। इन स्थानों से प्राप्त अवशेष, जिन्हें प्राचीन पंजाब की राजधानी तक्षशिला के उपनगर या बाहरी क्षेत्रों का पश्चिमी सीमांत क्षेत्र कहा जा सकता है, का निर्माण करते हैं[4]।

महान् कुषाण राजा कनिष्क को अक्सर उसके बौद्ध धर्म की ओर झुकाव के लिए याद किया जाता है। उसके द्वारा बौद्ध धर्म के प्रति किए गए कई महान् और प्रशंसनीय कार्यों में से एक पेशावर में बहुमंजिला *स्तूप* का निर्माण था जिसमें बुद्ध के अवशेष रखे गए थे। इस *स्तूप* का विस्तृत विवरण ह्वेनसांग द्वारा दिया गया है। यह कहा जाता है कि अल-बिरूनी के समय (11वीं शताब्दी) में भी इस *स्तूप* की जीवंत स्मृति बनी हुई थी। इस क्षेत्र से प्राप्त प्राचीन पुरातात्विक सामग्री में शामिल हैं:

1) इस *स्तूप* का मानचित्र,
2) इस *स्तूप* के साथ लगे हुए एक *विहार* का खाका,
3) पत्थर और महीन चूने (stucco) से निर्मित मूर्ति-शिल्प के कुछ नमूने, और
4) कनिष्क द्वारा तैयार सुविख्यात अवशेष-पात्र।

बौद्ध धर्म के संबंध में ह्वेनसांग का विवरण

जब वह भारत पहुँचा बौद्ध धर्म 18 मतों में विभाजित हो चुका था। प्राचीन बौद्ध केंद्रों का पतन होने का संकेत मिलता है। यद्यपि नालंदा, जहाँ उसने अध्ययन किया था, का उसके काल के सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रमुख बौद्ध-केंद्र के रूप में उल्लेख किया गया है। इसमें इसी नाम से बौद्ध अध्ययन हेतु एक प्रख्यात विश्वविद्यालय स्थापित और व्यवस्थित किया गया था। वह कहता है कि यहाँ 10,000 शिष्य, सभी भिक्षु, रहते थे और उन्हें *महायान* मत के बौद्ध दर्शन में शिक्षित किया गया था। यह ग्रंथीय विवरण इस स्थल पर किए गए पुरातात्विक उत्खनन से पुष्ट नहीं होता है जिसका ढाँचा 10,000 विद्यार्थियों को समायोजित करने का संकेत नहीं करता है, हालांकि सभी पुरातात्विक टीलों की खुदाई ना होने पर भी इस स्थल से अत्यधिक प्रभावशाली संरचनात्मक ढाँचे के साक्ष्य मिलते हैं। ये भवन पाँचवी शताब्दी से लेकर आने वाले 700 वर्षों तक निर्मित और पुनर्निर्मित किए जाते रहे थे। अतिशयोक्ति के बावजूद यह संदेह से परे है कि नालंदा हर्ष के काल में एक विशाल बौद्ध मठ था। इसके अतिरिक्त ह्वेनसांग हमें यह भी बताता है कि नालंदा के *विहार* को वित्तीय सहायता देने के लिए 100 गाँवों का राजस्व प्रदान किया गया था।

बौद्ध धर्म को हर्ष द्वारा प्रदत्त संरक्षण के संबंध में ह्वेनसांग का विवरण

ह्वेनसांग हर्ष को उच्च स्थान प्रदान करता है और बौद्ध धर्म के प्रति हर्ष के समर्पण की प्रशंसा करता है। हर्ष, जो अपने आरंभिक जीवन में एक शैव अनुयायी था, बौद्ध धर्म और उसकी शिक्षाओं के प्रति समर्पित हो गया था। *महायान* मत की शिक्षाओं के प्रचार और प्रसार के लिए उसने कन्नौज में एक विशाल विचार-सभा का आयोजन किया जिसमें ह्वेनसांग, भास्करवर्मन (कामरूप [असम] का राजा) और 21 अन्य राज्यों के राजाओं तथा बौद्ध मत के हज़ारों धर्मगुरु शामिल हुए।

---

[2] पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में अटक (Attock) जिले का एक स्थल

[3] अटक जिले में एक अन्य बौद्ध स्थल

[4] अलेक्ज़ेंडर कनिंघम; 'फोर रिपोर्ट्स मेड ड्यूरिंग द इयर्स 1862-65', *आर्कीयलॉजिकल रिपोर्ट्स संस्करण 2*, शिमला, 1871, पृ. 111-35.

ह्वेनसांग इस सभा की विस्तृत जानकारियाँ देता है जिसमें दो विशाल सभा-कक्षों का निर्माण भी शामिल है जिसमें से प्रत्येक में 1000 प्रतिभागी रह सकते थे। लेकिन सबसे प्रभावी और अद्भुत निर्माण-कार्य केंद्रीय स्थान में एक भव्य *स्तूप* था जिस पर राजा के कद की बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित थी। हर्ष ने इस प्रतिमा की स्तुति की और एक सार्वजनिक रात्रि-भोज दिया। ह्वेनसांग ने इस सभा को *महायान* मत के सिद्धांतों को प्रस्तुत करते हुए शुरू किया और उसने श्रोताओं को आलोचना और प्रश्नों को सामने रखने की चुनौती दी। पाँच दिनों तक जब कोई भी आगे नहीं आया तो यह कहा जाता है कि उसकी धर्म-विद्या के विरोधियों ने उसकी हत्या का षड्यंत्र रचा। लेकिन हर्ष को यह जानकारी हो गई और उसने अपने इस बौद्ध उपदेशक को थोड़ी सी भी हानि पहुँचाने वाले का सिर धड़ से अलग कर देने की चेतावनी दी। वहीं विशाल *स्तूप,* जिस पर बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा रखी हुई थी, में आग लग गई और स्वयं राजा की हत्या करने का असफल प्रयास हुआ। हर्ष के द्वारा 500 ब्राह्मणों, जो इस षड्यंत्र के लिए उत्तरदायी थे, को पकड़ लेने का उसने उल्लेख किया है। राजा ने इनमें से कुछ को मरवा डाला तथा अन्य को देश-निकाला दे दिया। यदि इस वृत्तांत पर विश्वास किया जाए तो पता चलता है कि हर्ष उतना सहिष्णु नहीं था जितना कि उसे अन्यथा प्रस्तुत किया जाता रहा है।

ह्वेनसांग कन्नौज के बाद ऐसी ही एक सभा, जो प्रयागराज, उत्तर प्रदेश में हुई थी, के आयोजन का वर्णन करता है जिसमें हर्ष के सभी अधीनस्थ राजकुमारों, अधिकारियों और मंत्रियों ने भाग लिया था। बुद्ध की प्रतिमा की आराधना की वही रीति तथा ह्वेनसांग द्वारा उपदेश तथा व्याख्यान देने का वही उपक्रम हुआ। इसका समापन हर्ष द्वारा भव्य दान-दक्षिणा में हुआ और यह प्रसिद्ध उक्ति है कि उसने अपने निजी वस्त्रों के अतिरिक्त समस्त संपत्ति का दान कर दिया। ह्वेनसांग हर्ष का एक दयालु, विनम्र तथा संपूर्ण रूप से उदार शासक के रूप में वर्णन करता है। वह हर्ष को उसके साम्राज्य में विभिन्न स्थानों पर यात्रा करने हेतु धन उपलब्ध कराने का श्रेय भी देता है।

सामंतवाद के संबंध में ह्वेनसांग का विवरण

भारतीय सामंतवाद, अर्थात भू-स्वामियों की सत्ता और केंद्रीय सत्ता के विखंडन, पर विश्वास करने वाले इतिहासकारों द्वारा, जैसा कि हमने फ़ाह्यान वाले खंड में पढ़ा है, ने ह्वेनसांग से अपने मत का समर्थन जुटाया है। पुराने समय में साम्राज्य का केंद्र रही पाटलिपुत्र की संपन्न नगरी, जो मगध क्षेत्र में पुष्पित और पल्लवित होती रही थी, उत्तर-गुप्त काल में दो शताब्दियों बाद इसका मात्र एक गाँव में बदल जाने का उल्लेख मिलता है। यही वैशाली के साथ हुआ। ह्वेनसांग के विवरण उस समय समृद्ध हो रहे तथा महत्व पा रहे कन्नौज और प्रयाग का उल्लेख करते हैं।

हर्ष का प्रशासन सामंतीय और विकेंद्रित स्वरूप का था। इसका समर्थन ह्वेनसांग के द्वारा हर्ष के राजस्व के चार हिस्सों में बाँटे जाने के उल्लेख से होता है: पहला राजा के व्यय के लिए, दूसरा विद्वानों को संरक्षण प्रदान करने के लिए, तीसरा अधिकारियों और लोक-सेवकों की व्यवस्था तथा उन्हें अनुदान देने के लिए और अंतिम भाग धार्मिक उद्देश्यों के लिए।

भूमि-अनुदानों की निरंतरता और उनमें आई तीव्रता को उसके लेखन में इस उल्लेख से समझा जा सकता है कि उच्च अधिकारियों को भूमि-अनुदानों के रूप में भुगतान किया जाता था तथा पुरस्कृत किया जाता था ताकि वे स्वयं की व्यवस्था कर सकें। हर्ष के काल में सिक्कों के साक्ष्य की कमी इसकी पुष्टि करती प्रतीत होती है।

जाति प्रथा के संबंध में ह्वेनसांग का विवरण

वह उल्लेख करता है कि सामान्य रूप से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय साधारण जीवन निर्वाह कर रहे थे जबकि राजा, अधिकारी तथा उच्च श्रेणी के पुरोहित या राजा के निकटस्थ विलासिता में रहते थे। इससे इन दो उच्च *वर्णों* की श्रेणी तथा प्रतिष्ठा में विभेद व पदानुक्रम का संकेत मिलता है। दिलचस्प रूप से वह इन दोनों *वर्णों* के अधिकांश लोगों के खेती में संलग्न होने का भी उल्लेख करता है। यदि यह सत्य है तो इससे ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए निर्दिष्ट कार्यों और कर्तव्यों के संदर्भ में ***धर्मशास्त्रों*** में निर्धारित आदर्श से विचलन का संकेत मिलता है। वह शूद्र कृषकों का भी उल्लेख करता है। संभवतः वे अत्यधिक प्रचलन में आ चुकी भूमि-अनुदानों की प्रथा के अंतर्गत भुगतान या उपहार के रूप में विभिन्न दान प्राप्तकर्ताओं को प्राप्त भूमियों पर खेती करने वाले रहे होंगे। फ़ाह्यान की तरह ही वह

अस्पृश्यों, जैसे जल्लादों, अपमार्जकों (scavengers), इत्यादि का उल्लेख करता है। इनका उल्लेख रिहायशी क्षेत्रों के बाहर रहने वालों, प्याज़ और लहसुन खाने वालों के रूप में किया गया है। ज़ोर से पुकार कर या अन्य माध्यमों से उनके प्रवेश की सूचना दी जाती थी ताकि लोग उनकी उपस्थिति से सचेत रहें और उनसे बच सकें।

बोध प्रश्न-1

1) आपके मत में यूनानी वृत्तांत मेगस्थनीज की *इंडिका* पर एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में किस प्रकार विश्वास किया जा सकता है?

....

....

....

2) उस काल के इतिहास की पुनर्रचना किस प्रकार की जा सकती है जब चीनी यात्री फ़ाह्यान और ह्वेनसांग भारत आए थे? इनके यात्रा-वृत्तांतों के संदर्भ में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

15.4 दक्षिण एशिया की अरब अवधारणा

अब्बासी ख़लीफ़ाओं द्वारा *बैतु-उल हिकमा* की स्थापना ने बड़ी संख्या में यूनानी और भारतीय क्लासिकीय ग्रंथों के अरबी अनुवादों को सृजित किया। इस बौद्धिक जागरूकता ने हिंदुओं के धर्म तथा विज्ञान के प्रति अत्यधिक दिलचस्पी पैदा की। यह कहा जाता है कि अब्बासी *वज़ीर* याह्या बरमाकी ने भारतीय धर्मों के विषय में जानकारी जुटाने के लिए एक दल भारत भेजा था, इसका परिणाम यात्रा-वृत्तांतों, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक विवरणों के संबंध में विपुल साहित्य के सृजन में निकला।

15.4.1 दक्षिण एशिया की आरंभिक अरब अवधारणा

भारत पर लिखा गया आरंभिक ऐतिहासिक ग्रंथ अल-बालादुरी द्वारा रचित था, जो बग़दाद का निवासी था और अब्बासी ख़लीफ़ा अल-मुतवक्किल का *नदीम* था। उसकी *फुतुह अल-बुलदान* युद्धों और विजयों तथा अरब, मिश्र, उत्तरी अफ़्रीका, स्पेन, ईराक़, ईरान और सिंध में अरब सत्ता की स्थापना का इतिहास है। अल-बालादुरी कभी भी भारत नहीं आया था और उसका सिंध में अरब विजय का विवरण मुख्यतः अल-मदैनी (मृ. 843 सी ई) की कृति पर आधारित है, जो अब उपलब्ध नहीं है। दिलचस्प रूप से, अल-बालादुरी और *चचनामा* के अरब लेखक दोनों ने सिंध पर अरब विजय की जानकारी अल-मदैनी से ली है, लेकिन *चचनामा* की तुलना में अल-बालादुरी का सिंध विजय का विवरण काफ़ी संक्षिप्त है।

सईद अल-अंदलूसी (मृ. 1070 सी ई) यह जानकारी देता है कि 'भारतीयों का उनके ज्ञान व विवेक के लिए सम्मान किया जाता था' (निज़ामी 1994: 66)। आरंभिक अरब विवरण सांप्रदायिक सद्भाव तथा समस्त भारत में मुस्लिमों के लिए आदर भाव की मौजूदगी का संकेत करते हैं। इसके अतिरिक्त एक-दूसरे के धर्म तथा क्षेत्रों को समझने के लिए दोनों ही ओर जिज्ञासा भी नज़र आती है। बुज़ुर्ग बिन शहरयार (10वीं शताब्दी) ने अपनी *अजायब अल-हिंद* में लिखा है जब उमर (634-644 सी ई) ने एक अरब नाविक से भारत के विषय में पूछा, उसने उत्तर दिया, 'इसकी नदियाँ मोती हैं और पर्वत माणिक्य, इसके वृक्ष सुगंध हैं' (निज़ामी 1994: 56)। अल-बालादुरी लिखता है कि जब ख़लीफ़ा उस्मान (644-656 सी ई) के निर्देश पर हाकिम बिन जबल अबदी को भारत के संबंध में जानकारी जुटाने के लिए भेजा गया, उसने यह जानकारी दी कि 'भारत में पानी की कमी है, खजूर बहुत बुरे हैं और डाकू अत्यधिक जाँबाज़ हैं। सेना की एक छोटी टुकड़ी नष्ट हो जाएगी, और एक बड़ी सेना भूख और अभाव से मर जाएगी' (निज़ामी 1994: 56)।

उनके विवरणों में भारत को धन, मसालों, सुगंधित काष्ठ, और वस्त्रों की भूमि के रूप में अंकित किया गया है। अरब वृत्तांतों में काली मिर्च के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध क्षेत्र होने के कारण मालाबार को

बलद-ए फिल़फ़िल के रूप में रूप में वर्णित किया गया है। इस क्षेत्र की इतनी अधिक ख्याति थी कि मालाबार का नाम, जैसा कि हम उसे आज इस नाम से जानते हैं, वस्तुतः अरब शब्दावली (*माली* = पर्वत; *बार* = देश) से व्युत्पन्न हुआ है। अबु अला सिंधी हमें यह सूचना देता है कि: 'अपने जीवन में यही ऐसी भूमि देखी जहाँ बारिश होती है तो दूध, मोती और माणिक्य जन्म लेते हैं, उन लोगों के इस्तेमाल के लिए जिनके पास ये नहीं हैं' (निज़ामी 1994: 68)।

सामान्यतः अरब वृत्तांत भारत में प्रचलित धार्मिक सहिष्णुता तथा सांप्रदायिक सामंजस्य की प्रशंसा करते हैं। वे मुस्लिम व्यापारियों, व्यवसायियों और दार्शनिकों के प्रति भारतीय शासकों की गर्मजोशी तथा अपने क्षेत्रों में उनके द्वारा प्रदान की गई धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लेख करते हैं। सुलेमान (849 सी ई) गुजरात के शासक वल्लभ राय (राय बिल्हार) की उसके उदार संरक्षण तथा उसके क्षेत्रों में अरबों को प्राप्त स्वतंत्रता के लिए प्रशंसा करता है। अल-मसूदी, जो 915 में खंभात आया था, लिखता है: 'सिंध या हिंदुस्तान में किसी भी अन्य देश में अरबों और मुस्लिमों के साथ इतने सम्मान के साथ व्यवहार नहीं किया जाता है, जितना कि बिल्हार राजा के राज्य में किया जाता है। इस्लाम इस राज्य में सुरक्षित, प्रतिरक्षित और भली-भाँति संरक्षित है। यहाँ मस्जिदें और जामा मस्जिदें हैं, जिनमें ईमान रखने वाले लोग बड़ी संख्या में एकत्र होकर नमाज़ अदा करते हैं' (निज़ामी 1994: 59)। अल-मक़दीसी इस्लामी शिक्षा और ज्ञान की मज़बूत उपस्थिति का संकेत करते हुए लिखता है:

> अधिकांश मुस्लिम *एहसन अल-हदीस* हैं, और यहाँ मैंने क़ाज़ी अबू मुहम्मद मंसूरी दाऊदी को देखा जो अपने पंथ का *इमाम* था, वह एक शिक्षक तथा लेखक था, उसने कई अच्छी पुस्तकों की रचना की है। मुल्तान के लोग शिया हैं ... यहाँ का कोई भी नगर विधि के जानकारों और हनफ़ी मत के '*उलमा*' से रहित नहीं हैं, लेकिन यहाँ मलिकी, मुताज़िल्ला या हनाबली नहीं हैं।
>
> **निज़ामी 1994: 62-63**

अरबों में भारतीय धार्मिक व्यवहारों के विषय में सीखने के प्रति जिज्ञासा का भाव नज़र आता है, याह्या बरमाकी ने भारतीय धर्मों के संबंध में जानकारी जुटाने के लिए एक अरब विद्वान को भेजा था, वह कई प्रकार के हिंदू संप्रदायों की उपस्थिति की जानकारी देता है: महाकालीय, अल्दानिकायत (अदित भक्ति), चंद्रभक्तिया, गंगायात्री, राजपुत्य, इत्यादि। वह राजपूतों के संदर्भ में दिलचस्प जानकारी प्रदान करता है: 'वे मानते हैं कि उनका पहला और अंतिम कर्तव्य राजा के प्रति निष्ठा और समर्पण के साथ सेवा करना है। उनके लिए मुक्ति पाने का एकमात्र रास्ता राजा की सेवा में मर जाना है' (निज़ामी 1994: 66)। इब्न खुर्दादबिह (मृ. 911) भारत में सात जातियों और बयालीस संप्रदायों की मौजूदगी के विषय में बताता है। अल-मक़दीसी (मृ. 1000), इसके बजाय भारत में समनी (श्रमणिक; बौद्ध) तथा ब्राह्मणीय दो व्यापक श्रेणियों के अंतर्गत 900 संप्रदायों की उपस्थिति को अंकित करता है। गंगा नदी को पार करने पर लगाए जाने वाले निषेध के व्यवहार का भी अल-मक़दीसी उल्लेख करता है। वह ब्राह्मणों द्वारा अपने धर्म में बाहरी लोगों को ग्रहण करने की अनिच्छा का भी ज़िक्र करता है। अल-शहरस्तानी ने अरबों और भारतीयों की धार्मिक आकांक्षाओं तथा धार्मिक विचारों को समानता के पदों में देखा है; दोनों ही धर्म अध्यात्मिक झुकाव रखते थे। शहरस्तानी (मृ. 1173) तीन प्रमुख समुदायों को अंकित करता है: ब्राह्मण, प्रकृतिवादी (*सांख्य* का अस्पष्ट-सा संदर्भ?), और द्वैतवादी (*अद्वैतवादियों* का एक अस्पष्ट वर्णन)। वह हमें सूर्य उपासकों (*दिनाकित्य*), चंद्र उपासकों (*जंद्रिकान्य*), वृक्ष उपासकों (*वृक्ष-भक्त*), जल उपासकों (*जलोस्वकीय*) और अग्नि उपासकों (*अग्निहोत्रीय*) की उपस्थिति की जानकारी देता है। दिलचस्प ढंग से, वह भारतीय दार्शनिकों का मूल पाइथागोरस (यहाँ पाइथागोरस के शिष्य क़लामुस [?] का संदर्भ दिया गया है), के अनुयायियों के बीच खोजता है, जो भारत भ्रमण पर आया था और भारत में ही बस गया था। यद्यपि इस तरह की कहानी की सत्यता को खोज पाना मुश्किल है और न ही इसमें वर्णित व्यक्ति की पहचान कर पाना; हालांकि मेगस्थनीज़ की *इंडिका* में सिकंदर की सेवा में शामिल होने वाले एक ब्राह्मण दार्शनिक का उल्लेख कालानोस के रूप में किया गया है।

शुरुआती अरब विवरण भारतीय विज्ञान, विशेष रूप से खगोल-विद्या, गणित तथा चिकित्सा के प्रति श्रद्धा से भरे हुए हैं। ब्रह्मगुप्त का *ब्रह्मसिद्धांत* इब्राहिम फ़राज़ी द्वारा एक पंडित की सहायता से, अल मंसूर के काल में, अरबी में अनुवादित किया गया था। 'बसरा के अल-जहीज़ ने खगोल-विद्या, गणित, चिकित्सा, शिल्पशास्त्र, रंगीन चित्रकारी, वास्तुकला और संगीत के क्षेत्र में भारतीय योगदान की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है' (निज़ामी 1994: 63)। भारतीय चिकित्सा विज्ञान का इतना सम्मान था कि मनका को हारून अल-रशीद के उपचार के लिए आमंत्रित किया गया था। बग़दाद में स्थापित अनुवाद ब्यूरो में भी मनका को संस्कृत अनुवादों के प्रभारी का कार्य सौंपा गया था। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट की कृतियाँ अरब देश तक जा पहुँची थीं। याक़ूबी और इब्न नदीम ने अरबी में अनुवादित भारतीय चिकित्सा ग्रंथों की लंबी सूची प्रस्तुत की है। इब्न नदीम (मृ. 995) भारतीय पंडितों भल्ला, मनका, बाज़ीगर (बाजकर?), फ़लबरफ़ल (कल्प राय काल?), आदि के विषय में सूचना देता है, जो अनुवाद के कार्य में लगाए गए थे। मुहम्मद बिन मूसा ख़्वारिज़्मी, जिसने पहली बार भारतीय अंकों तथा गणित का अरब की दुनिया से परिचय कराया था और जहाँ से (ख़्वारिज़्म से) यूरोप ने दाशमिक संख्या प्रणाली (decimal numeration; एल्गोरिदम) को सीखा था।

यद्यपि इन यात्रियों द्वारा कुछ सामाजिक बुराइयों की घोर निंदा की गई है, विशेष रूप से ये दक्षिण भारत में प्रचलित *देवदासी* प्रथा के आलोचक थे। इसी प्रकार उन्होंने *सती* के अग्निदाह को भी घृणास्पद शब्दों में वर्णित किया है।

समान रूप से, अरब विवरणों में नदियों तथा उनके नामों का जो उल्लेख मिलता है, ग़ैर-अरबी होने के कारण, अवश्य ही अरबों के लिए इनका उच्चारण अत्यंत मुश्किल रहा होगा, इसलिए इनकी पहचान करना मुश्किल है। उदाहरण के लिए, जुरान पर्वत की पहचान करना मुश्किल है, जिस पर बहादुनिया के मंदिर के स्थित होने का उल्लेख मिलता है। हिंदू संप्रदायों के लिए प्रयुक्त अरबीकृत शब्दावली के संस्कृत समानार्थियों की पहचान करना भी अक्सर मुश्किल है। बकरांतीनीया और बहादुनिया की पहचान करना असंभव है। इसी प्रकार अक्सर इनमें विरोधाभासी व्याख्या दी गई हैं। उदाहरण के लिए, अल-शहरस्तानी सामान्य रूप से अग्निहोत्रियों की व्याख्या अग्नि पूजकों के रूप में करता है जबकि अल-बिरूनी उन्हें ऐसे ब्राह्मणों के रूप में वर्णित करता है जो तीन तरह की अग्नि की पूजा करते हैं। अल-शहरस्तानी यह उल्लेख करता है कि बिना किसी धर्मग्रंथ (The Book) के ही भारतीय देवता धरती पर मानव के रूप में अवतरित हुए। अल-शहरस्तानी की बौद्ध धर्म के संदर्भ में जानकारियाँ काफ़ी हद तक बौद्ध शिक्षाओं के निकट हैं: वह बुद्ध शाकमिन (शाक्यमुनि) और बोधिसत्व (बुदिसेव) के नाम का उल्लेख करता है; इसी प्रकार वह बुद्ध के '*चार आर्य सत्य*' (अल-शहरस्तानी पाँच सद्गुणों का उल्लेख करता है) का संकेत भी करता है; इसी प्रकार बुद्ध के '*अष्टांग मार्ग*' भी अपने आधार रूप में अल-शाहरस्तानी के लेखन में देखने को मिलते हैं। यद्यपि वह बौद्ध धर्म की ब्राह्मणवाद या हिंदू धर्म की ही शाखा के रूप में उल्लेख करता है। कालक्रम का उसका बोध भी त्रुटिपूर्ण है। वह उल्लेख करता है कि बुद्ध के आगमन से लेकर मुहम्मद साहब के प्रस्थान *हिज्र* (622 सी ई) के समय तक 5000 वर्ष बीत चुके हैं। इसी प्रकार अल-शहरस्तानी की भारतीय खगोल-विद्या के संबंध में जानकारी भी काफ़ी त्रुटिपूर्ण है। भारतीय खगोल-विद्या के अनुसार सबसे विशाल और परोपकारी ग्रह बृहस्पति है, न कि शनि, जैसा कि अल-शहरस्तानी ने उल्लेख किया है। अल-शहरस्तानी जैन धर्म का बिल्कुल भी उल्लेख नहीं करता; वहीं बौद्ध धर्म उसके लिए कोई अलग धर्म नहीं था।

अरब भूगोलवेत्ताओं में इस्तख़री और इब्न हौक़ल विशेष स्थान रखते हैं। इस्तख़री ने 951 में भारत की यात्रा की और यहाँ के विभिन्न स्थानों पर गया, यहीं वह अपने समकालीन भूगोलवेत्ता इब्न हौक़ल से मिला था। उसने *किताब अल-अक़ालिम* और *मसालिक वल ममालिक़* की रचना की। इब्न हौक़ल ने *किताब सूरत अल-अर्ज़* की रचना (989) की थी। उसका वृत्तांत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह भारत के नगरों का विवरण और उनके बीच की दूरियों की जानकारी देता है। इस्तख़री और इब्न हौक़ल, दोनों ही ने सिंध के विस्तृत मानचित्र तैयार किए थे जो इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

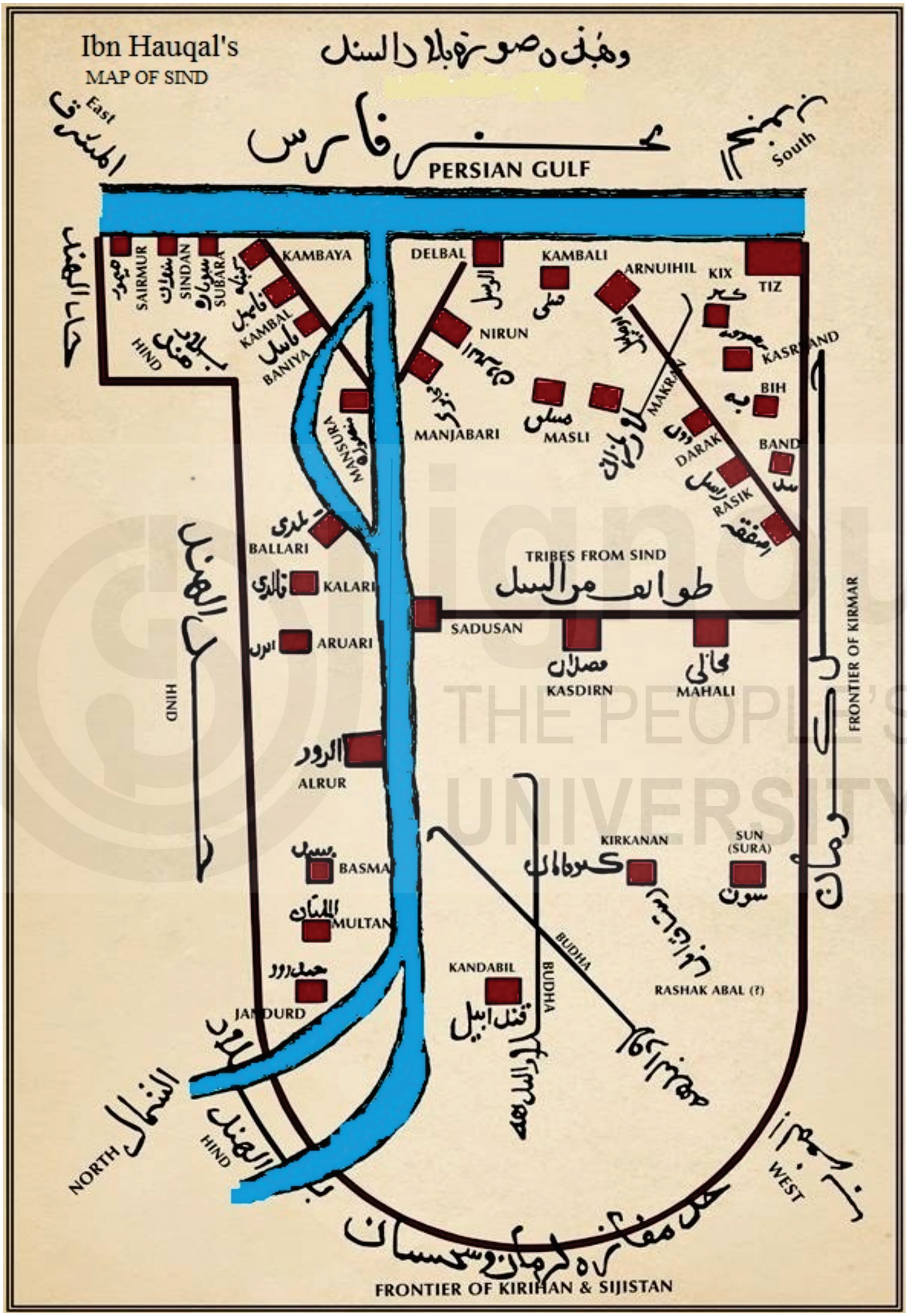

इब्ल हौक़ल का सिंध का मानचित्र

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

अल-इस्तख़री का सिंध का मानचित्र

15.4.2 अली कूफ़ी और उसका *चचनामा*[5]

11वीं शताब्दी के अंत में फ़ारसी, अभिजात्यों की भाषा के रूप में अरबी का स्थान लेने लगी थी। तथापि फ़ारसीकृत संसार में ज्ञान को हस्तांतरित करने की प्रक्रिया के रूप में अरबी ग्रंथों के अनुवाद की प्रवृत्ति बनी रही। अली कूफ़ी का *चचनामा* इसी तरह का एक प्रयास था। इसी समय नए मुस्लिम शासक वर्ग द्वारा सिंध और मुल्तान में अरबों की नीतियों को समझने का प्रयास नज़र आ रहा था। अली कूफ़ी की इच्छा सिंध की अरब विजय (712-13) की *तारीख़* लिखने और इसे सुल्तान नसीरुद्दीन कुबाचा के *वज़ीर* आइन-उल मुल्क अशारी, जो उसका संरक्षक था, को समर्पित करने की इच्छा थी। उसे अरुर क़स्बे (सिंध) में, सिंध पर अरब विजय पर एक पुराना हेजाज़ी अरबी ग्रंथ मिला था, जिसका उसने अनुवाद करने का निर्णय लिया। इसकी पांडुलिपि अरूर के क़ाज़ी इस्माइल बिन अली बिन उस्मान अल-सक़ाफ़ी के पास थी। अली कूफ़ी ने इस मूल पांडुलिपि के रचयिता का नाम नहीं दिया है। हालांकि, इस प्रक्रिया में कूफ़ी ने अपने समय की राजनीतिक परंपरा से मेल खाते हुए कुछ बदलाव इस ग्रंथ में किए हैं। अपने संरक्षक कुबाचा को वह जो संदेश पहुँचाना चाहता था, उस पर टिप्पणी करते हुए आई. एच. सिद्दीकी (2014: 30) कहते हैं:

> रायों, ठाकुरों और रानागान का संकेत करने का उसका उद्देश्य नसीरुद्दीन कुबाचा को यह विश्वास दिलाना था कि वह स्थानीय भूस्वामी मुखियाओं से सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए क्योंकि वे भारतीय राजव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण तत्व का निर्माण करते थे। उसका अभिप्राय यह है कि एक मुस्लिम विजेता को हिंदू मुखियाओं के ऊपर अपनी विजय को नई बसावट की शुरुआत के रूप में देखना चाहिए न कि विध्वंस के रूप में। इससे यह संदेश जाता था कि सत्ता के सुदृढ़ीकरण के लिए राज्य और भूमिपति कुलीनों के बीच सहयोग की आवश्यकता थी।

मनान अहमद (2016) यह तर्क देते हैं कि यह किसी अरबी पांडुलिपि का अनुवाद नहीं है और न ही विजय के संबंध में लिखी गई पुस्तक है, जैसा कि कूफ़ी दावा करता है। इसके बजाय, यह तेरहवीं शताब्दी की एक रूमानी किताब है जो समकालीन फ़ारसी और सिंधी राजनीतिक परिदृश्य से प्रभावित थी। यहाँ हमारा उद्देश्य इस अकादमिक बहस में पड़ना नहीं है कि यह एक युद्ध-आख्यान था या नहीं। तथ्य तो यह है कि यह आरंभिक *उमय्यद* (अरब) विजयों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है और तेरहवीं शताब्दी के सिंधी पाठकों लिए लिखित और उन्हें संबोधित ग्रंथ था।

कूफ़ी का *चचनामा* सिंध और पंजाब की अरब विजय का एक सामान्य अनुवाद भर नहीं है, इसके बजाय उसने इसमें सिंध में दाहिर के ब्राह्मण-चच वंश के सत्ता की ओर अग्रसर होने के विवरण जोड़े हैं, जिसे दाहिर के पिता चच द्वारा स्थापित किया गया था। इस प्रक्रिया में उसने सिंध की महारानी और चच के बीच कुछ रूमानी प्रसंगों और महारानी द्वारा किए गए विश्वासघात, जिसके परिणाम स्वरूप चच को सत्ता प्राप्त हुई, का वर्णन जोड़ा है। यह सब मूल अरबी ग्रंथ का हिस्सा नहीं मालूम पड़ता है और संभवतः, यह बाद में, उसके समय में लोकप्रिय कथाओं के आधार पर जोड़ा गया प्रतीत होता है। इस प्रकार सिंध के हिंदू शासकों से संबंधित हिस्सा कूफ़ी द्वारा बाद में जोड़ा गया था और यह किंवदंतियों से भरा हुआ है।

हालांकि चच द्वारा विश्वासघात से सत्ता प्राप्त करने की कहानी कई किंवदंतियों का मिश्रण प्रतीत होती है। तथापि, इससे राय सहरस के पुत्र राम को चच-ब्राह्मण द्वारा सत्ता से बेदखल करने का संकेत मिलता है, जिसने राम के सभी समर्थकों को समाप्त कर दिया था तथा उसकी रानी से विवाह किया था, दाहिर उसका पुत्र था जो मुहम्मद बिन क़ासिम की सिंध विजय के समय वहाँ शासन कर रहा था। एक अन्य कथा भी, जो कूफ़ी द्वारा गढ़ी गई प्रतीत होती है, मुहम्मद बिन क़ासिम के अंत से संबंधित है। यहाँ भी यह तथ्य स्पष्ट नहीं है कि क़ासिम के मृत्युदंड के पीछे बग़दाद में ख़लीफ़ा के दरबार में भेजी गईं दाहिर की पुत्रियाँ ज़िम्मेदार थीं या नहीं, इसके बावजूद यह तथ्य तो स्पष्ट है कि मुहम्मद बिन क़ासिम को ख़लीफ़ा द्वारा वापस बुला लिया गया था और क्रूरतापूर्वक उसकी हत्या की गई थी। स्पष्ट रूप से कूफ़ी द्वारा ख़लीफ़ा का दिया गया हुआ संदर्भ सही प्रतीत नहीं होता है। उस समय बग़दाद नहीं बल्कि दमिश्क (Damascus) उमय्यद ख़लीफ़ाओं की राजधानी थी। संभवतः यह हुआ होगा कि मुहम्मद क़ासिम, ख़लीफ़ा वालिद का विश्वासपात्र था और उसकी मृत्यु के बाद

[5] *चचनामा*, जो आज हमें जिस रूप में मिलता है, वह एक फ़ारसी ग्रंथ है। लेकिन, चूँकि यह एक पूर्ववर्ती अरबी ग्रंथ का अनुवाद है जिसे विशुद्ध रूप से अरबी शैली में लिखा गया है, इस कारण से हमने *चचनामा* को अरबी ग्रंथों की श्रेणी में रखा है।

वे सभी, जो ख़लीफ़ा वालिद के घनिष्ठ थे, उन पर ख़लीफ़ा सुलेमान ने विश्वास नहीं किया और उन्हें मौत के घाट उतार दिया। मुहम्मद बिन क़ासिम की हत्या भी इसी प्रक्रिया का हिस्सा रही होगी। *चचनामा* इलाफ़ी बंधुओं (अरब) की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है जिन्होंने मकरान में विद्रोह किया था और उस समय ईराक़ और पूर्वी प्रांतों के गवर्नर हज्जाज बिन युसूफ़ ने इस विद्रोह को दबाने के लिए सेनाएँ भेजी थीं। हज्जाज के क्रोध से भयभीत होकर इलाफ़ी बंधुओं ने अरबों की रणनीति के विरुद्ध दाहिर का साथ दिया था। *चचनामा* हमें दाहिर की अरबों के विरुद्ध वीरता का वर्णन भी करता है। दाहिर की पराजय हो जाने पर इलाफ़ी बंधुओं ने कश्मीर में शरण ली। *चचनामा* यह बताता है कि मुहम्मद बिन क़ासिम ने इलाफ़ी बंधुओं को सज़ा देने के बजाय उन्हें आमंत्रित किया और न केवल उन्हें क्षमा किया बल्कि उनके अनुभव का उपयोग स्थानीय सरदारों का सहयोग प्राप्त करने के लिए किया और इस प्रकार सौहार्द और मित्रता का माहौल सुनिश्चित किया।

चचनामा, चच शासकों और बौद्ध अनुयायियों के बीच संबंध पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। यह संकेत करता है कि बौद्ध ब्राह्मण शासकों के साथ सहयोग करने के अनिच्छुक थे क्योंकि उन्होंने चच शासकों के हाथों कष्ट झेले थे। यही कारण था कि जब अरबों ने आक्रमण किया, उन्होंने, उन्हें अपना सहयोग और समर्थन प्रस्तुत किया। इसमें यह भी अंकित है कि नेरून के समनी प्रमुख ने मंसूर बिन हज्जाज के पास, दाहिर के विरुद्ध अरबों के सहयोग हेतु, अपना राजदूत भेजा था। एक सरदार मोका ने मुहम्मद बिन क़ासिम को अपना पूर्ण समर्थन दिया, जिसके बदले क़ासिम ने न केवल तीन प्रांतों की सूबेदारी उसे सौंपी बल्कि शाही प्रतीक और *ख़िल्लत* भी प्रदान की। काका, बुधिया का बौद्ध सरदार, भी अरब सेना से मिल गया था।

चचनामा अरब विजय और हज्जाज और क़ासिम के बीच हुए पत्र व्यवहार की विस्तृत जानकारी के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है। अल-बालादुरी, यद्यपि, सिंध की अरब विजय को अंकित करता है, *चचनामा* क़ासिम और हज्जाज के बीच हुए पत्र व्यवहार की अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराता है। दोनों के मध्य हुए पत्र व्यवहार से उनके द्वारा विजित लोगों को दी गई धार्मिक स्वतंत्रता का पता चलता है। वह क़ासिम को स्पष्ट-निर्देश देता है कि किसी भी व्यक्ति के धार्मिक मामले में कोई दख़ल नहीं दिया जाना चाहिए और उसे विजित लोगों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता और सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए। यह अरब विजेताओं के हाथों शिल्पकारों और दस्तकारों को मिले पूर्ण समर्थन और प्रोत्साहन का संकेत भी करता है। *चचनामा* यह भी संकेत करता है कि क़ासिम ने ब्राह्मणों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया और उनके द्वारा पूर्व में धारण पदों पर उन्हें बहाल रखा। उन्हें अपने मंदिरों के पुनर्निर्माण, अपने उत्सवों और समारोहों को मनाने की अनुमति भी दी गई। अन्य महत्वपूर्ण प्रेक्षण जो वह हमें उपलब्ध कराता है वह विजय के समय जाटों की दयनीय परिस्थिति और अरबों द्वारा उन्हें प्रदत्त अनुग्रह के संबंध में है:

> उसे (मुहम्मद बिन क़ासिम) बताया गया कि जाट भद्दे कपड़े पहनने और नंगे पाँव चलने को बाध्य थे, अगर उन्हें अच्छे वस्त्र पहने पकड़ लिया जाता तो उन पर जुर्माना लगाया जाता था। जब वे अपने द्वार से बाहर निकलते, उन्हें अपने बच्चे और अन्य कुटुम्ब-जनों को साथ ले जाना पड़ता। उनमें से किसी को भी घोड़े पर सवार होने की अनुमति नहीं थी, और अगर उन्हें होना ही पड़ता, तो उन्हें बिना रक़ाब और लगाम के घोड़े पर चढ़ना पड़ता था।
>
> **सिद्दीक़ी 2014: 35**

अरब इतिहास लेखन की परंपरा के विपरीत, जो ऐतिहासिक तथ्यों को, बिना पाठक के सौंदर्यबोध की संतुष्टि को ध्यान में रखते हुए, सीधे-सीधे प्रस्तुत करती है, अली कूफ़ी ने अपने *मुकद्दिमा* में नसीरुद्दीन क़ुबाचा और उसके *वज़ीर* की उपलब्धियों से संबंधित लोकप्रिय कथाओं को प्रस्तुत किया है और उच्छ तथा भाकर (Bhakar) जैसे नगरों का व्यापार और संस्कृति के केंद्रों के रूप में विकास का उल्लेख किया है। *चचनामा* ऐसा पहला ग्रंथ है जो हमें यह सूचना देता है कि उच्छ क़ुबाचा की राजधानी थी जिसे वह *हज़रत-ए उच्छ* कहता है। *चचनामा* में कई हिंदी शब्द जैसे *ताकुर* (ठाकुर), *राय* (शासक), *रानागान* (भूपति सरदार), *देवदार, मट्टी* (कीचड़), *जोगनी* (हिंदू सन्यासिन), *इक़्तात* और *विलायत* दो सांस्कृतिक परंपराओं – इस्लाम-पूर्व ईरानी-अरब और भारतीय – के बीच हो रहे सम्मिश्रण को स्पष्ट करते हैं। इसमें तेरहवीं शताब्दी में सिंधी समाज में प्रचलित लोक कथाओं के तत्वों को भी देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न-2

1) संक्षेप में अरब भूगोलवेत्ताओं की भारत की अवधारणा का उल्लेख कीजिए।

....

....

2) क्या आप इससे सहमत हैं कि फ़ारसी में *चचनामा* के अनुवाद की प्रक्रिया के दौरान अली कूफ़ी ने ऐसी कई कथाओं को जोड़ा जो मूल अरबी पांडुलिपि का हिस्सा नहीं थीं?

....

....

3) बौद्धों और ब्राह्मणों के बीच संघर्ष पर *चचनामा* क्या प्रकाश डालता है?

....

....

15.4.3 अल-बिरुनी

सिंध पर मुहम्मद बिन क़ासिम की विजय के साथ अरबों के राजनीतिक-सांस्कृतिक दायरे में व्यापक रूप से विस्तार हुआ और इसके साथ ही उनका भारत के विषय में ज्ञान भी बढ़ा। अल-बिरूनी (973-*c.* 1052) का विवरण इस प्रक्रिया के चरम की ओर संकेत करता है। अल-बिरूनी एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था, एक महान् दार्शनिक, गणितज्ञ, खगोलविद, प्राकृतिक विज्ञानी, मानवविज्ञानी, भूगोलवेत्ता और इतिहासकार। ज्ञान के प्रति उसके गहरे जुनून और जिज्ञासू पैनी नज़र ने उसे विभिन्न प्रकार के स्रोतों को ग्रहण करने की ओर प्रेरित किया। परिणामस्वरूप, इसने उसके भीतर वस्तुनिष्ठता को भी बढ़ावा दिया। वह अरबी (जिस भाषा में वो लिखता था), फ़ारसी, तुर्की, हिब्रू ,आर्मीनियाई और संस्कृत भाषाओं का ज्ञाता था। वह मूल रूप से उस समय ख़्वारिज़्म की राजधानी कथ के एक उपनगर बिरुन, अमू दरिया के पार, अराल सागर के निकट स्थित, से संबंध रखता था। संभवतः उसने अपने काल का सर्वाधिक उथल-पुथल भरा समय देखा था और छः शासक-वंशों/राजाओं की सेवा में रहा था। ख़्वारज़्म शाह के संरक्षण (996-998) से शुरू कर वह समानियों, कुबुस इब्न वोशमग़ीर (वस्तुतः यहीं वह अपने समय के महान् दार्शनिक-वैज्ञानिक इब्न-ए सीना से मिला था) और अंततः उसे 1017 में ग़ज़नी के महमूद के दरबार में बलपूर्वक शामिल होने को कहा गया; जिसके साथ वह अपने शेष जीवन में जुड़ा रहा। महमूद ग़ज़नी के साथ संबंध के दौरान वह उसके साथ 1022 और 1026 में दो बार भारत आया था और अंततः 13 वर्षों के लंबे समय के लिए यहाँ रुका, जिसका अधिकांश समय उसने संस्कृत सीखने और भारतीय दर्शन, विज्ञान, धर्म और संस्कृति के संबंध में संस्कृत विद्वानों के साथ संवाद करते हुए बनारस में बिताया। उसने लगभग 180 कृतियों की रचना की जिनमें से 22 ही अब उपलब्ध हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य अल-बिरूनी की खगोल-विद्या और गणित के संबंध में असाधारण परियोजनाओं पर प्रकाश डालना नहीं है, इसके बजाय भारत के संबंध में उसके पर्यवेक्षण पर ही केंद्रित रहना है। भारत में अपने लंबे निवास के दौरान उसने स्वयं संस्कृत सीखी और लगभग सभी उपलब्ध संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया – विशेष रूप से धार्मिक ग्रंथ, जैसे *वेद, गीता, उपनिषद्, न्याय-भाष्य* (दिलचस्प रूप से वह *न्याय-वैशेषिक* को छोड़ देता है), *अगस्त्यमत, लोकायत, सांख्य,* पतंजलि की *योगसूत्र, स्मृति* साहित्य (*मनुस्मृति*, इत्यादि) और *पुराण* तथा नागार्जुन, आर्यभट्ट, इत्यादि के वैज्ञानिक ग्रंथ, आदि। उसने भारतीय विज्ञानों के संदर्भ में जानकारी एकत्र की, विशेष रूप से खगोल-विद्या, ज्योतिष, धर्म, साहित्य और उस काल की संस्कृति के विषय में। यह भारत के संबंध में उसके पर्यवेक्षण को अनूठा बनाता है। उसकी संस्कृत इतनी अच्छी थी कि वह कुछ पंडितों की सहायता से संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद अरबी में कर सका था और कुछ अरबी ग्रंथों का संस्कृत में। उसने *किताब सांख्य* और *किताब बातंजलि* (*पतंजलि*) का अरबी में अनुवाद किया, यद्यपि इसमें से पहला समय की मार को नहीं सह सका। उसने *कर्ण तिलक*, खगोल-विद्या और ज्योतिष पर एक पुस्तक, जो सूर्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण पर चर्चा करती है, का अनुवाद किया, *ग़रत-उल ज़िजात* नाम से। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि मूल संस्कृत में *कर्ण तिलक* आज उपलब्ध नहीं है और यह केवल *अल-बिरूनी* के अनुवाद के माध्यम से ही हमें उपलब्ध है। उसने 1030 में, महमूद की मृत्यु के कुछ समय बाद ही, *किताब फ़ी तहक़ीक़ मा लिल-हिंद* की रचना की जिसे सामान्य तौर पर *तारीख़-ए हिंद* या

किताब अल-हिंद के रूप में जाना जाता है। महमूद द्वारा भारतीय क्षेत्रों पर आक्रमणों तथा विध्वंस पर क्षोभ प्रकट करते हुए वह टिप्पणी करता है, उसने 'काफ़ी हद तक इस देश की समृद्धि को नष्ट कर दिया था, स्थानीय लोगों के बीच मुस्लिमों के प्रति घृणा पैदा की और हिंदू विज्ञानों को उन हिस्सों से काफ़ी दूर भेज दिया जहाँ हमारी विजय हो चुकी थी, उन स्थानों पर जहाँ हमारे हाथ अभी तक नहीं पहुँचे थे।'

ऐतिहासिक विश्लेषण के संदर्भ में, उसके द्वारा प्रदत्त जानकारी सामान्यतः सटीक है। यद्यपि कई बार दंत-कथाओं को ऐतिहासिक तथ्यों से अलग करना मुश्किल होता है। इसी प्रकार, अल-बिरूनी उन स्थानों का वर्णन करने में थकता नहीं है जिन स्थानों की उसने यात्रा की थी। लेकिन, ऐतिहासिक सादृश्य का उसका बोध अत्यंत सुदृढ़ है। उसका विवरण अक्सर ही उसके स्वयं के अवलोकनों से भरा हुआ है और उसकी तर्क क्षमता उसके लेखन का एक मज़बूत पक्ष है जो उसकी वैज्ञानिक प्रवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम है। वह भारतीय भाषा/भाषाओं, साहित्य और संस्कृति के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में आने वाले बाधक कारक कौन से हैं और क्यों है, इसका विश्लेषण करता है। इसका कारण वह भिन्न धार्मिक विश्वास, संस्कृत को सीखने में कठिनाई और आमजन की उदासीनता को बताता है। वह ब्राह्मणों के शुद्धिकरण के विचार की आलोचना करता है। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजन की भारतीय *चतुर्वर्ण* व्यवस्था को भारत की विशेष व्यवस्था नहीं समझता है और ईरान में भी इसी तरह के चतुर्वर्गीय विभाजन – योद्धा और राजकुमार; भिक्षु, अग्नि-पुरोहित; वकील, चिकित्सक, खगोलविद, इत्यादि; और अंततः किसान और शिल्पकार – के बीच समानता की उपस्थिति का संकेत करता है। हालांकि, वह अपने समय के ब्राह्मणों/भारतीयों के अपरिवर्ती और आत्मकेंद्रित दृष्टिकोण की तीव्र आलोचना करता हैः

> हिंदुओं का यह विश्वास है कि उनके देश जैसा कोई नहीं है। कोई भी राष्ट्र उनके जैसा नहीं है, न कोई राजा उनके जैसा है और न ही कोई धर्म उनके धर्म जैसा है। वे मूर्ख-दम्भी, अभिमानी और आत्ममुग्ध और भावशून्य हैं। वे स्वभाव से ही जो जानते हैं उसे बताने में कंजूसी करते हैं और अपने ही लोगों के बीच भिन्न जाति के लोगों से इस ज्ञान को दूर रखने में अधिकतम संभव सतर्कता रखते हैं, और, ज़ाहिर है, इससे भी ज्यादा किसी विदेशी से। उनका अभिमान इस दर्जे का है कि अगर तुम उन्हें खुरासान और फ़ारस के किसी विज्ञान या विद्वान के बारे में बताओ तो वे आपको अज्ञानी और असत्यवादी दोनों ही समझेंगे।

भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक आदर्श के संबंध में उसका अवलोकन अत्यंत तीक्ष्ण रहा है। विभिन्न विचार-मतों के प्रति ब्राह्मणों की सहिष्णुता का वह आश्चर्य के साथ अंकन करता हैः

> कुल मिलाकर हिंदुओं के बीच धार्मिक विषयों को लेकर थोड़ा-बहुत ही विवाद रहता है; अधिक से अधिक वे शब्दों से ही लड़ते हैं, लेकिन वह किसी धार्मिक विवाद में अपने जीवन, शरीर या अपनी संपत्ति को ख़तरे में नहीं डालते। **सिद्दीक़ी 2003: 17**

वह अभिजात्यों (*ख़व्वास*; शिक्षित) और आमजनों (*आवाम*; अज्ञानी) के बीच अंतर करता है। वह यूनानी तथा भारतीय विचारों के बीच ऐतिहासिक संपर्क ढूंढने का भी प्रयास करता है; यद्यपि वह ग़लत ढंग से पाइथागोरस के शिष्य, यूनानी विद्वान फ़िलारुस के भारत आने की बात कहता है और यह जानकारी देता है कि उससे ही ब्राह्मणों ने पाइथागोरस का सिद्धांत सीखा था। इसी प्रकार, हालांकि, उसने संस्कृत सीखी थी, अनुवाद के लिए वह पंडितों के संस्कृत-वाचन पर निर्भर था और तब उसने इसका अरबी में अनुवाद किया था; इस प्रकार 'अन्य द्वारा किए गए रूपांतरण तथा व्याख्या पर निर्भर होने के कारण' उसके अरबी अनुवादों की वस्तुनिष्ठता में कमी आती है। तथापि, वह पहला मुस्लिम लेखक था जो 'हिंदू धर्म' के विषय में वस्तुनिष्ठता के साथ लिख रहा था। इस प्रकार अक्सर ही उसका विवरण उस पक्ष को प्रकट करता है जो ब्राह्मणों और पंडितों ने उसे बताया था, और प्राथमिक पर्यवेक्षण की इसमें कमी नज़र आती है। कई बार वह मुस्लिम श्रेणियों को 'हिंदू' धारणा के अपने विश्लेषण में मिलाता हुआ प्रतीत होता है।

15.4.4 इब्न बतूता

भारत के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण और विस्तृत यात्रा-वृत्तांत इब्न बतूता (1304-1368-69? 1377-1378?) का है, जो तंजियर (Tangier) से आया एक मूर (मुस्लिम) यात्री था। उसने 1325 में, अपनी यात्रा

21 वर्ष की अत्यन्त युवा अवस्था में शुरू की थी। मिस्र, सीरिया, अरब, ईराक़, टर्की (Turkey) और मावराउन्न-नहर होते हुए वह उत्तर-पश्चिमी प्रवेश द्वार से सिंधु घाटी में, 1333 में, पहुँचा। जहाँ से वह सम्मानपूर्वक दिल्ली लाया गया, उसका आदरपूर्वक स्वागत किया गया और उस समय के सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ (1325-1351) द्वारा उसे दिल्ली का मलिकी *क़ाज़ी* बनाया गया। वह इस सेवा में आठ सालों की लंबी अवधि तक रहा और उसके बाद मुहम्मद बिन तुग़लक़ के दूत के रूप में एक बार फिर चीन के लिए साहसिक यात्रा पर निकल पड़ा, भारत के पश्चिमी तट से मालदीव (दो बार), श्रीलंका, बंगाल, असम और सुमात्रा होते हुए ज़ैतून (आधुनिक क्वांनझाओ) के चीनी पत्तन पर पहुँचा, उसके द्वारा बीजिंग में चीनी सम्राट से मिलने का उल्लेख आता है, जहाँ से वह स्वदेश के लिए 1353 में सुमात्रा, मालाबार, फ़ारस की खाड़ी, ईराक़, सीरिया और मिस्र होते हुए निकल पड़ा। उसके पहुँचने पर मेरीनिद (Marinid) सुल्तान अबु इनान ने उससे अपनी साहसिक यात्राओं को कलमबद्ध करने के लिए कहा और इब्न जुज़ाय को इब्न बतूता के आख्यान, *रेहला*, को संकलित करने हेतु नियुक्त किया, जिसे अंततः 1357 में पूरा किया गया। इब्न जुज़ाय ने, यद्यपि, इस ग्रंथ को कई स्थानों पर उस समय की साहित्यिक परंपराओं के अनुसार संशोधित तथा अलंकरणबद्ध किया था, तथापि, इब्न बतूता का विवरण पूर्ण रूप से निजी अनुभव पर आधारित था। हालांकि, कई बार उसकी स्मृति धोखा खा जाती है और वह कई बार नगरों का ग़लत क्रम, तो कई बार स्थानों का ग़लत नाम पेश करता है; और कई बार एक व्यवस्थित कालक्रम को खोज पाना मुश्किल हो जाता है, किंतु इस तरह की त्रुटियाँ उसके द्वारा शामिल जानकारियों, स्थानों और व्यक्तियों के नामों के विस्तार को देखते हुए तुलनात्मक रूप से कम ही नज़र आती हैं। वहीं, हालांकि, इब्न बतूता यह दावा करता है उसने विश्वसनीय ढंग से सत्य का वर्णन किया है, तथापि कई बार उसके लेखन में अतिशयोक्तियाँ नज़र आती हैं। यहाँ, यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह मुख्यतः एक इस्लामी धर्मशास्त्रीय ढाँचे के अंतर्गत लिख रहा था, वह स्वयं इस्लामी धर्म-विद्या और विज्ञान में प्रशिक्षित और शिक्षित था और उसी दृष्टिकोण से चीज़ों की व्याख्या करता था। उसके यात्रा-वृत्तांत को मुख्यतः दो हिस्सों में बाँटा गया है, इसका पहला हिस्सा इस्लामी दुनिया और अफ़्रीका से संबंध रखता है, यहाँ हमारा मुख्य सरोकार दूसरे हिस्से से है, जो भारत, श्रीलंका और मालदीव से संबंध रखता है।

इब्न बतूता *क़ाज़ियों* (धर्मशास्त्रियों) के एक प्रतिष्ठित परिवार से संबंध रखता था तथा इस प्रकार वह धार्मिक अभिजात्य उच्च वर्ग से आता था। लेकिन फिर भी वह कई बार परंपरा को तोड़ता हुआ नज़र आता है (उसे मालदीव में अपने स्वतंत्र चिंतन के कारण विरोध झेलना पड़ा और उस स्थान को छोड़ना पड़ा था)। जिन स्थानों पर वह गया, उन स्थानों की रीतियों और रिवाज़ों का वह महान् पर्यवेक्षक था।

दिल्ली में अपने निवास के दौरान *क़ाज़ी* के रूप में वह सुल्तान के साथ कई अभियानों में रहा, उस समय के दिल्ली के अभिजात्य वर्ग के साथ उसका अंतर-संवाद हुआ और उस समय की घटनाओं से वह गहराई के साथ जुड़ा हुआ था। हालांकि, उसे दो बार सुल्तानों का क्रोध झेलना पड़ा, एक बार मुहम्मद बिन तुग़लक़ का, इस सीमा तक कि उसे अंततः कैद में डाल दिया गया और कई प्रयासों के बाद ही उसे छोड़ा गया था, और दूसरी बार उसने मालदीव में खुद को ऐसी ही समस्या से घिरा हुआ पाया।

इब्न बतूता एक उत्साही पर्यवेक्षक था और अपनी विश्लेषणात्मक क्षमता में काफ़ी कुशल था। इसके अतिरिक्त उसका समस्त विवरण उसके निजी अनुभवों पर आधारित था जिसका वह स्वयं प्रत्यक्षदर्शी था और जो उसने स्वयं अनुभव किया था। जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है जिस पर उसने टिप्पणी न की हो। वह मुहम्मद बिन तुग़लक़ के प्रशासन से घनिष्ठता से जुड़ा हुआ था, इसलिए वह सैनिकों की भर्ती, सैन्य दुर्गों, प्रशासनिक तंत्र, न्यायिक प्रक्रियाओं, टकसाल, भार और माप, संगीत के यंत्रों, इत्यादि के विषय में सूक्ष्म जानकारी प्रदान करता है। बर्नियर की तरह ही, जो मुग़ल शाही शिविर को 'एक चलता-फिरता नगर' के रूप में वर्णित करता है, हमें मुहम्मद बिन तुग़लक़ के शाही शिविर में भी लगभग उसी प्रकार का जीवन देखने को मिलता है। शाही शिविर का जिस तरह उसने वर्णन किया है, वह 'चलते-फिरते नगर' की तरह नज़र आता है। शाही शिविर शामियानों, बाज़ारों, दफ़्तरों, महिलाओं और बच्चों के साथ-साथ सेवकों को लिए हुए समस्त तामझाम के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रस्थान करते रहते थे। उसके द्वारा किए गए कुछ प्रेक्षण अन्य स्रोतों में नहीं मिलते हैं, विशेष रूप से भारतीय डाक व्यवस्था और *चौधरियों* की मौजूदगी को लेकर दी गई उसकी जानकारी। इब्न

बतूता आमजनों और धार्मिक आलिमों के बीच अंतर को स्पष्ट करता है। उसका विवरण दरबारी और नगरीय जीवन के प्रसंगों से भरपूर है; दरबार के समारोह, भव्य शाही महफ़िलें और भोज, जहाँ विशेष व्यंजन परोसे जाते थे। वह कुलीन वर्ग के लोगों द्वारा नियमित रूप से ताराबाबाद (गणिकाओं और संगीत प्रवीण स्त्रियों और गायिकाओं के अंतःक्षेत्र) में जाने का उल्लेख करता है और इन अंतःक्षेत्रों का सचित्र वर्णन प्रस्तुत करता है।

इब्न बतूता के पास विलक्षण विश्लेषणात्मक बुद्धि थी, वह गायों के प्रति हिंदुओं की अपार श्रद्धा और गायों को मारने वालों के प्रति क्रूर दंड के प्रावधान का उल्लेख करता है। इसके विपरीत, वह उल्लेख करता है कि श्रीलंका में यद्यपि गायों को सम्मान दिया जाता था किंतु इस तरह के दंडात्मक उपाय नहीं अपनाए जाते थे, जिस तरह भारत में। इसी प्रकार इब्न बतूता पवित्र-अपवित्र (purity and pollution) के प्रचलित विचार की ओर भी संकेत करता है, वह दर्ज करता है कि हिंदू, मुस्लिमों को अपने घरों में प्रवेश नहीं करने देते हैं और न ही अपने बर्तनों को उनके साथ साझा करते हैं, श्रीलंका के विपरीत जहाँ इस तरह के भेदभाव की सोच नहीं थी। इस प्रकार वह तथ्यों के विश्लेषण में महारत रखता है, वह एक प्रसंग के बाद दूसरे प्रसंग की न केवल चर्चा ही करता है, बल्कि प्रत्येक प्रसंग के बाद उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। वह अक्सर यह देखता है कि कई मामलों में हिंदू और मुस्लिम एक ही समान हैं, विशेष रूप से, कुछ संतों को हिंदू और मुस्लिम एक समान श्रद्धा से देखते थे। वह हिंदुओं के धर्मार्थ कार्यों की प्रशंसा करता है।

इब्न बतूता का एक अन्य मज़बूत पहलू भारतीय कृषि, फसलों और उगाये जाने वाले फलों के संबंध में दिया गया विस्तृत विवरण है। पान के पत्तों और नारियल के उत्पादन का उसका विवरण न केवल विस्तृत है बल्कि इनके सामाजिक महत्व और प्रासंगिकता को भी स्पष्ट करता है। वह भारतीय *चपाती* (रोटी) और *पराठा, समोसा* और *सीख़ कबाब* की भी तारीफ़ करता है।

इब्न बतूता मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा विदेशियों को दिए जाने वाले सम्मान की भी प्रशंसा करता है, जिन्हें वह प्रेम से *ऐज़्ज़ा* पुकारता था। वह एक महान् अन्वेषक और भूगोलविद् भी था। उसका वृत्तांत यात्रा-मार्गों, यात्रा में आने वाली समस्याओं और उपमहाद्वीप के तत्कालीन गाँवों और नगरों को समझने हेतु अत्यंत महत्व का है। जहाँ भी वह गया, उसने वहाँ के लोगों की रीतियों और प्रथाओं को गहराई के साथ देखा। यद्यपि, कालक्रम को प्रस्तुत करने और तिथियों के मामले में सही होने में इब्न बतूता में अत्यधिक कमियाँ हैं। वह सटीक तिथियों का उल्लेख नहीं करता है। वह सामान्य रूप से यह कहता है कि वह मुल्तान में 60 दिन रहा लेकिन कब और किन महीनों में, वह यह नहीं बताता। इसी प्रकार वह कहता है कि वह मालदीव, श्रीलंका, मालाबार और माबर में तीन साल रहा और कालीकट में उसने एक महीने का एकांतवास गुज़ारा। लेकिन, वह यह नहीं स्पष्ट करता की किन महीनों और वर्ष के किस हिस्से में वह वहाँ रहा था।

15.4.5 अल-उमरी और अल-क़लक़शन्दी

अल-उमरी (1301-1348) तथा अल-क़लक़शन्दी (मृ. 1418), हालांकि कभी भी भारत नहीं आए थे किंतु उन्होंने भारत के संबंध में पहले के वृत्तांतों और उन यात्रियों और व्यापारियों के वृत्तांतों से, जो भारत आए थे, प्राप्त सामग्री के आधार पर विस्तृत विवरण लिखे थे। उमरी की *मसालिक-उल अबसार फ़ी ममालिक इल अमसार* भारत सहित कई देशों का भौगोलिक और ऐतिहासिक विवरण है। उसका विवरण मुहम्मद बिन तुग़लक़ (1325-1351) के काल के भारत की राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों पर रोशनी डालता है। उमरी विस्तार से व्याख्या करता है और उचित रूप से यह टिप्पणी करता है कि दिल्ली का अभिप्राय केवल एक राजधानी नगर से नहीं था, बल्कि इसमें कई राजधानी-क्षेत्र शामिल थे। वह यह भी बताता है कि दिल्ली के सुल्तान (मुहम्मद बिन तुग़लक़) ने देवगीर (देओगीर) में एक राजधानी-नगर की स्थापना की थी, जिसे *कुब्बत-उल इस्लाम* कहा जाता था। उसने यह भी बताया है कि यह एक योजनाबद्ध नगर था, इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग और शिल्प के लिए पृथक आवास क्षेत्र बने हुए थे, प्रत्येक क्षेत्र कितने गाँवों से मिलकर बना था, इसके संबंध में भी वह जानकारी देता है। इस प्रकार की जानकारी देने वाला यह एकमात्र स्रोत है, किंतु अन्य सुनिश्चित आँकड़ों के अभाव में उसकी जानकारियों की पुष्टि कर पाना मुश्किल है। तथापि, इससे उस विस्तृत क्षेत्र पर प्रकाश पड़ता है जो इसमें शामिल था। दिल्ली के नगर का उसका वर्णन भी काफ़ी विस्तृत है, वह कुतब मीनार की मस्जिद के साथ ही इस नगर में स्थित *मदरसों, हौज़ों* और मस्जिदों

का उल्लेख करता है। अन्य प्रेक्षण जो सटीक मालूम पड़ता है, वह यह था कि हज़ार *मदरसों* में से केवल एक ही शाफ़ई (Shafite) इस्लामी न्याय-शास्त्र से संबंधित था और यह उचित मालूम पड़ता है क्योंकि दिल्ली सल्तनत में हनफ़ी न्याय-शास्त्र का वर्चस्व था। *कारख़ाना* और डाक व्यवस्था के संबंध में उसका अवलोकन अत्यंत महत्व का है। इब्न बतूता के बाद दिल्ली सुल्तानों की डाक व्यवस्था की प्रशंसा और इस संबंध में विस्तार से चर्चा करने वाला वह एकमात्र स्रोत है। वह सुल्तान के द्वारा ज़रीदार वस्त्रों के *कारख़ानों* में 4000 कशीदाकारों की नियुक्ति का उल्लेख भी करता है। किंतु सर्वाधिक जिस विषय की वह चर्चा करता है, वह है सुल्तान की उदारताः

> सुल्तान की उदारता और धर्मार्थ कार्यों की महानता ऐसी है कि दुनिया को उन्हें कई पन्नों में लिखना चाहिए, उसके अच्छे कर्मों के लेखे-जोखे को, और लोगों को उन्हें दर्ज करना चाहिए ... यह सुल्तान प्रतिदिन दो लाख भिक्षा में देता है ... *मक़तबों* में हज़ारों *फ़क़ीह* नियुक्त किए गए हैं, जिनका भुगतान *दीवान* द्वारा किया जाता है। वे अनाथों और लोगों के बच्चों को *क़िरात* (*क़ुरान* पढ़ने की पद्धति) और लेखन सिखाते हैं। वह किसी भी भिखारी को दिल्ली में भीख माँगने की आज्ञा नहीं देता था; वहीं दूसरी ओर हर एक उस व्यक्ति को प्रतिबंधित किया गया था जो भीख माँगता था और उसे उतना ही धन प्रदान किया जाता था, जितना *फ़क़ीर* प्राप्त करते थे।
>
> सुल्तान ने एक दल, जिसका मैं (शेख़ अबू बक्र; बयानकर्ता) भी एक हिस्सा था, तीन लाख के सोने के साथ मावराउन्न-नहर के क्षेत्र में भेजा, इसमें से एक लाख दानिशमंदों के बीच बाँटने के लिए और अन्य एक लाख गरीबों के बीच दान के रूप में बाँटने के लिए थे ...
>
> **मुहम्मद ज़की (2009) *अरब अकाउंट्स ऑफ़ इंडिया* (दिल्लीः इदारा-ए अदबियात-ए दिल्ली), पृ. 32-33**

उमरी द्वारा किया गया मुहम्मद बिन तुग़लक़ का अवलोकन और प्रेक्षण अत्यंत महत्व का है, क्योंकि यह, बरनी, जो उसके दुर्भाग्य तथा साम्राज्य के विखंडन के लिए सुल्तान के चरित्र पर दोष लगाता है, जिसका मुख्य कारण उसने सुल्तान द्वारा नास्तिक दर्शन के अनुकरण और तर्कवादियों (दार्शनिकों) की संगत पर लगाया है, की तुलना में सुल्तान की एक विपरीत छवि प्रस्तुत करता है।

अल *क़लक़शन्दी* की *सुब्ह-उल अशा*, मोटे तौर पर अल-उमरी तथा अन्य अरब भूगोलविदों की कृतियों पर आधारित थी, यद्यपि, कुछ जानकारी उसने निजी तौर पर यात्रियों और व्यापारियों से एकत्र की थी।

बोध प्रश्न-3

1) भारत तथा इसके निवासियों के संबंध में अल-बिरूनी के विचारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

2) भारतीय राजनीतिक-प्रशासनिक ढाँचे के संबंध में इब्न बतूता ने क्या अवलोकन किया था?

....

....

....

3) सुल्तान के रूप में मुहम्मद बिन तुग़लक़ के प्रति अल-उमरी का क्या दृष्टिकोण था?

....

....

....

15.5 फ़ारसी वृत्तांतकारों की नज़र में भारत

बारहवीं शताब्दी के बाद से इस्लामी दुनिया में फ़ारसी साहित्यकारों की भाषा के रूप में उभरने लगी। ईरान और मध्य एशिया के विद्वानों और यात्रियों ने अब अपने विवरण फ़ारसी में लिखने शुरू कर दिए। भारत के बारे में वर्णन करने वाले ऐसे फ़ारसी वृत्तांतों में सबसे पहला सदीउद्दीन मुहम्मद औफ़ी का

है। अन्य महत्वपूर्ण फ़ारसी विद्वान अता मलिक जुवैनी, अब्दुर रज़्ज़ाक़, रफ़ीउद्दीन शिराज़ी और बल्खी थे। अता मलिक जुवैनी (मृ. 1283) खुरासानी था, वह *सूबेदारों* और सिविल सेवकों के एक उच्च सम्मानित परिवार से था। उसके दादा और पिता, दोनों, ने मंगोल ख़ान की सेवा की थी। उसके पिता बहाउद्दीन ने मंगोल ख़ान ओगेदेई (Ogedei) की सेवा की और बाद में *c.* 1246 में अरघुन के नायब के रूप में सेवा की थी। जुवैनी ने खुद मंगोल खानेत की एक राज्य-अधिकारी के रूप में सेवा की थी। उसने दो बार काराकोरम में मंगोल राजधानी का दौरा किया। वह 1258 में बग़दाद की लूट के दौरान हलागू ख़ान के साथ ही था और ईराक़ और खुज़िस्तान (1259) के गवर्नर के रूप में नियुक्त हुआ था, जिस पद पर वह लगभग दो दशकों तक बना रहा था। उसने 1282 में अला-ताक़ में हुई मंगोल ***कुरुलताई*** में भाग लिया था। जुवैनी की *तारीख़-ए जहाँगुशा* तेरहवीं शताब्दी में मध्य एशिया में मंगोलों की घुसपैठ का प्राथमिक विवरण है। लेकिन सामान्य रूप से, चंगेज़ (Chenghiz) ख़ान पर उसका विवरण मंगोल नीतियों को समझने के लिए उपयोगी है।

रफ़ीउद्दीन शिराज़ी (जन्म 1540-1541) 1559-60 में ईरान से व्यापारी के रूप में भारत की यात्रा पर आया था और बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह (1557-1579) के दरबार में एक ख़िदमतगार और मुंशी के रूप में उसने अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं और बाद में बीजापुर के क़िले के गवर्नर और इब्राहिम आदिल शाह (1579-1626) के टकसाल के *दीवान* के रूप में नियुक्त हुआ था। उसकी *तज़किरात-उल मुलूक,* जो प्राथमिक रूप से आदिल शाही वंश की *तारीख़* है, इसके साथ ही समकालीन भारतीय राजनीति (दक्खनी सुल्तानों, मुग़लों और साथ ही सफ़ावियों) पर भी प्रकाश डालती है। रफ़ीउद्दीन शिराज़ी अकबर की सादगी का वर्णन आश्चर्य के साथ करता है कि बादशाह इतना अनौपचारिक है कि वह अपने साथियों और अजनबियों के बीच कोई भेद नहीं करता है। यहाँ तक कि जब राजा भ्रमण पर होता था, बादशाह के लिए कोई विशिष्ट राजसी शिष्टाचार नहीं दर्शाया जाता था और न ही विशिष्ट अभिवादन किया जाता था। हालांकि, वह टिप्पणी करता है कि उसे बताया गया था कि दरबार में विस्तृत शिष्टाचार का पालन किया जाता था। एक अन्य ईरानी यात्री महमूद बिन अमीर वली बल्खी 1624-1625 में बल्ख (उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान) से भारत की यात्रा पर आया था और काबुल से कन्याकुमारी और श्रीलंका की यात्रा करते हुए छः सालों (1631) तक भारत में रहा। उसने दक्खनी सल्तनतों और दक्षिण भारत की यात्रा की थी। वह एक 'सच्चा इतिहासकार' प्रतीत नहीं होता है, बल्कि एक 'सच्चे पर्यटक' के रूप में उसकी दिलचस्पी अपने द्वारा यात्रा किए गए क्षेत्रों के संबंध में जिज्ञासाओं को दर्ज करने में थी, इसलिए, उसके विवरण उन स्थानों में प्रचलित किंवदंतियों और कथाओं की भरमार है, जहाँ वह गया था। उदाहरणार्थ, वह इंदुरकी में एक ऐसे कुएँ का ज़िक्र करता है जिसका पानी मीठा और खारा, दोनों, था और इसके बाद इसके पीछे की कहानी बताता है।

इस भाग में हम औफ़ी और अब्दुर रज़्ज़ाक़ के विवरणों की विस्तार से चर्चा करेंगे।

15.5.1 औफ़ी

बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी का फ़ारसी विद्वान सदीउद्दीन मुहम्मद औफ़ी (1171-1242) की यात्राएँ अत्यंत व्यापक रही थीं। औफ़ी बुखारा में विद्वानों के परिवार में जन्मा तथा निशापुर में *मुज़ाकिर* (धार्मिक उपदेशक) के रूप में नियुक्त हुआ था। 1220 में मध्य एशिया के मंगोल आक्रमण के बाद, वह ग़ज़ना के रास्ते से लाहौर होते हुए भारत आया। वह वहाँ व्यापारियों से मिला और उनके कहने पर हनफ़ी मुसलमानों के धार्मिक उपदेशक के रूप में काम करने के लिए वह जहाज़ के माध्यम से खम्भात पहुँचा। खंभात की अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए, वह मुस्लिम नाविकों द्वारा चुंबकीय कम्पास (compass) के उपयोग का सबसे पहला संदर्भ प्रदान करता है। यहाँ औफ़ी व्यापारियों में बड़े पैमाने पर मुस्लिम समुदाय की उपस्थिति की प्रशंसा करता है, जिन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। मुहम्मद समरक़ंदी के अनुनय पर औफ़ी उसके साथ सिंध तक गया और उच्छ पहुँचा।

औफ़ी ने नसीरुद्दीन कुबाचा के कहने पर, अपने समय के घटनाक्रमों को संकलित करने के लिए *जवामी-उल हिक़ायत वा लवामी-उल रिवायत* लिखना शुरू किया। इसकी रचना के लिए औफ़ी ने अरबी शास्त्रीय (classical) ग्रंथों, प्रारंभिक फ़ारसी ग्रंथों और वणिकों और व्यापारियों से एकत्र की गई जानकारियों का इस्तेमाल किया। पहला अध्याय काफ़ी हद तक 'मिरर ऑफ़ प्रिंसेस' की शैली

में संकलित किया गया है जो मुख्य रूप से प्रारंभिक सूफ़ियों द्वारा उद्धृत उपाख्यानों में दर्ज विभिन्न शासकों द्वारा स्थापित परंपराओं से संबंधित है। इस कारण से औफ़ी का यह ग्रंथ बाद के सूफ़ियों के मध्य प्रतिष्ठित और सम्मानित हुआ और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रारंभिक सूफ़ियों के संबंध में साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना के रूप में प्रयुक्त किया गया। इसका भारत के प्रारम्भिक सूफ़ियों पर गहरा प्रभाव था, विशेष रूप से महान् *मशायख़* जैसे बल्ख़ के अबु इशाक़ इब्राहीम बिन अधम; मर्व के शेख़ अबु अली फ़ुज़ैल बिन अयाज़ और शेख़ अबु सईद अबुल ख़ैर के जीवन के संबंध में विस्तृत जानकारी के संदर्भ में जो अन्यथा उपलब्ध नहीं है, तथा बाद के सूफ़ियों के लिए यह संदर्भ बिंदु बन गया।

यहाँ तक कि ज़ियाउद्दीन बरनी ने उन्हें प्रमुख हिंद-फ़ारसी इतिहासकारों में शामिल किया है और अपने समय में औफ़ी के ग्रंथ की लोकप्रियता के बारे में बताया है इससे यह पता चलता है कि इस्लामी दुनिया में किस प्रकार शासन की कला विकसित हुई पर विद्वानों के मध्य यह समान रूप से लोकप्रिय ग्रंथ था। औफ़ी ने इस्लामी दुनिया के विवरण को 'पूरी दिल्ली सल्तनत में एक सांस्कृतिक संदर्भ बिंदु' के रूप में इस्तेमाल किया है (सिद्दीकी 2014ः 58)। जब औफ़ी इल्तुतमिश द्वारा दिल्ली में दारुल शिफ़ा (*बीमारिस्तान*; अस्पताल) की स्थापना की सूचना देता है तो वह ग़ज़ना में इसी तरह के अस्तपाल की स्थापना का वर्णन करता है। औफ़ी का ग्रंथ 'धार्मिक और शासक अभिजात्य वर्ग के लिए निर्देशपुस्तिका' की तरह था (सिद्दीकी 2014ः 59)। औफ़ी 'आध्यात्मिक वास्तविकताओं', रणनीति और नैतिक मूल्यों के लिए मार्गदर्शक के रूप में काम करने के लिए ऐतिहासिक प्रसंगों का इस्तेमाल करता है। उसने ख़लीफ़ा अली द्वारा, अपने चचेरे भाई अब्दुलाह बिन अब्बास के परामर्श के बावजूद, मुआविया (सीरिया के गवर्नर) को जल्दबाज़ी में बर्खास्त करने की आलोचना की, जिसके कारण उसे साम्राज्य से हाथ धोना पड़ा था। इस प्रकार वह संदेश देता है कि संप्रभु शासक को विद्वानों और अनुभवी व्यक्तियों के परामर्श से कार्य करना चाहिए।

प्रारम्भिक मुस्लिम विजय पर औफ़ी का विवरण भी उतना ही महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से, वह पंजाब और काबुल के हिंदूशाही राजा और खुरासान के मुस्लिम सफ़ावी गवर्नर के बीच संघर्ष का विवरण प्रदान करता है। यह इसलिए ही महत्वपूर्ण नहीं है कि यह प्रारम्भिक मुस्लिम विजयों का विवरण देता है, बल्कि यह उस समय दक्षिण अफ़ग़ानिस्तान में स्थित हिंदू पवित्र स्थलों की जानकारी भी देता है, जैसे सैकावंद। वह दसवीं शताब्दी की शुरुआत में पंजाब के हिंदूशाही शासकों की राजधानी वैहिंद (आधुनिक रावलपिंडी के पास) में बसे मुस्लिम व्यापारियों को दी गई धार्मिक स्वतंत्रता की भी चर्चा करता है।

औफ़ी ने गुजरात के व्यापारी समुदाय की ईमानदारी और उच्च नैतिक आदर्शों और गुजरात के राजा कुमारपाल (1143-1173) के न्याय को भी दर्ज किया है। औफ़ी ने खंभात में मुस्लिम व्यापारियों के उपनिवेशों के विषय में भी बताया है, साथ ही उनके प्रति चालुक्य शासक के उदार दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला है। वह एक टकराव की कहानी बताता है जिसमें अस्सी मुसलमान मारे गए थे और मस्जिद को ध्वस्त कर दिया गया था। मस्जिद के *ख़ातिब* ने राजा जय सिंह के समक्ष जाकर इसकी शिकायत की। चालुक्य शासक ने सच्चाई का पता लगने पर मस्जिद को पुनः निर्मित करने का आदेश दिया और 100,000 *बलुतरा* (चाँदी का सिक्का) इसकी मरम्मत के लिए दिए। औफ़ी राजा की टिप्पणी का वर्णन करता है कि, 'जो लोग मेरे देश में रहते हैं, और जिन्हें पूरी सुरक्षा दी गई है, उन पर अत्याचार कैसे हो सकता है' (सिद्दीकी 2014ः 70)। मालवा के शासक के हमले के दौरान मस्जिद को एक बार फिर से नष्ट कर दिया गया था, जिसकी एक ईरानी व्यापारी सईद बू अशरफ़ बामी (बामयान का निवासी) द्वारा मरम्मत की गई थी, जो मस्जिद से प्राप्त 1169 के शिलालेख से प्रमाणित होता है। वह ग़जनवी साम्राज्य में ढाले गए कम वज़न के सिक्कों के चलन के संबंध में भ्रष्ट व्यवहारों की उपस्थिति के बारे में भी बताता है। वह सुल्तान अब्दुर राशिद (1051-1053) के शासन के ऐसे ही भ्रष्ट व्यवहार से इसकी तुलना करता है जिससे संकेत मिलता है कि औफ़ी अपने पाठकों को महत्वपूर्ण पदों पर बेईमान और भ्रष्ट लोगों को नियुक्त करने के परिणामों की चेतावनी देता है। इसी प्रकार वह आश्वस्त करता है कि महमूद जैसे दक्ष शासक राज्य के मामलों को कुशलता से नियंत्रित कर सकते हैं। वहीं, अब्दुर रशीद जैसे अकुशल शासक राज्य के शासन को सफलतापूर्वक चलाने में असफल रहे थे।

औफ़ी का पहला संरक्षक नसीरुद्दीन क़ुबाचा था। हालाँकि, अंततः यह ग्रंथ इल्तुतमिश के *वज़ीर*, निज़ामुल मुल्क जुनैदी, को समर्पित किया गया था। इसने पंजाब के खोख़र सरदारों के साथ उसके संबंध वाले प्रसंग को छोड़कर, सम्भवतः औफ़ी को क़ुबाचा की प्रशंसा वाले हिस्सों को हटाने के लिए

मजबूर किया होगा। यह विवरण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्थानीय सरदारों के साथ प्रारंभिक तुर्की सुल्तान के संबंधों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। औफ़ी क़ुबाचा की कूटनीतिज्ञ दक्षता का वर्णन करता है जिसके माध्यम से उसने खोखरों की सद्भावना अर्जित की, जो हमेशा ही क़ुबाचा के प्रति वफ़ादार बने रहे। औफ़ी ने दर्ज किया है कि खोखर सरदारों ने हालांकि ख़्वारिज़्म शाह का समर्थन किया था, किंतु उसके 1224 में ईरान लौट जाने पर जब खोखरों ने समर्पण कर दिया तो क़ुबाचा ने उन्हें माफ़ कर दिया था।

औफ़ी ने बग़दाद के ख़लीफ़ा मुआतसिम के साथ इल्तुतमिश के संबंधों का भी वर्णन किया है, जिसने 1227 में *ख़लीफ़ा* को बहुमूल्य उपहार भेजे थे। बदले में, *ख़लीफ़ा* ने उसे अन्य उपहारों के साथ ही *ख़िल्लत* (सम्मान-पोशाक) भी भेजी। औफ़ी दर्ज करता है कि इल्तुतमिश ने यह अपने *वज़ीर* की सलाह पर किया था। इस प्रकार, औफ़ी दोहराता है कि राजा को सक्षम *अमीरों* (*amirs*) की सलाह का पालन करना चाहिए और उसी के अनुरूप कार्य करना चाहिए। औफ़ी ने राजमार्ग में होने वाली लूट और डकैती को दबाने के लिए सुल्तान इल्तुतमिश और उसके *वज़ीर* की प्रशंसा की है और इस प्रकार यात्रियों के लिए सड़कों की सुरक्षा सुनिश्चित की गई। औफ़ी इल्तुतमिश के शासनकाल के दौरान एक प्रकार की *ज़ब्त* व्यवस्था (escheat) की उपस्थिति का भी संकेत देता है। इस संदर्भ में औफ़ी एक घटना को दर्ज करता है जहाँ बयाना के *क़ाज़ी* मुहम्मद गरदेज़ी ने झूठी सूचना दी कि हुसामुद्दीन अलैक की मृत्यु के बाद उसकी विशाल सम्पत्ति बयाना के कुछ लोगों द्वारा बंधक बना ली गई है तथा वह इसे वापस पाने में मदद कर सकता है ताकि इसे राजकोष में जमा कराया जा सके। इससे संकेत मिलता है कि *अमीर* की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति (सम्भवतः *मुतालिबा*; राज्य के हिस्से की शेष राशि) को राज्य द्वारा ज़ब्त कर लिया जाता था। यह इल्तुतमिश के शासनकाल में *ज़ब्त* का एकमात्र और अप्रत्यक्ष प्रसंग है। औफ़ी ने 1229-1230 में बंगाल में ख़लजी विद्रोह का भी विस्तार से वर्णन किया है, जिसके बारे में मिन्हाज की जानकारी काफ़ी संक्षिप्त है, जो 1226 में इल्तुतमिश द्वारा बंगाल पर आधिपत्य के बाद पूर्वी भारत में राजनीतिक गतिविधियों पर प्रकाश डालती है। ख़लजी दौलत शाह ने इल्तुतमिश के आधिपत्य को तब तक स्वीकार किया, जब तक नसीरुद्दीन महमूद जीवित था; 1229 में उसकी मृत्यु पर इतना प्रबल विद्रोह हुआ कि 1230 में इल्तुतमिश को व्यक्तिगत रूप से विद्रोह के दमन हेतु स्वयं लखनौती जाना पड़ा।

औफ़ी निज़ाम-उल मुल्क जुनैदी का उल्लेख सल्तनत के निर्माता के रूप में करता है, एक तथ्य जिसे हसन निज़ामी और मिन्हाज ने पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया है, वह जुनैदी को इल्तुतमिश के अधीन सल्तनत के सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी मानता है। यह एकमात्र स्रोत है जो यह सूचित करता है कि उसके पास *सद्र* का अतिरिक्त प्रभार था। जुनैदी की प्रशंसा करते हुए औफ़ी लिखता है:

> सुल्तानों द्वारा किए गए कार्यों और उनके द्वारा की गई चर्चाओं को उनके *वज़ीरों* द्वारा दी गई सलाह से चमक मिलती है। दरअसल, ये *वज़ीर* उनके मार्गदर्शक हैं। बीते युगों में किसी भी सुल्तान के पास ख्वाजा-ए-जहाँ...निजामुल्मुल्क...अल जुनैदी जैसा *वज़ीर* नहीं रहा है।

माल लेकर *कारवाँ* में चलने वाले मुस्लिम व्यापारियों के संबंध में भी औफ़ी की जानकारी अत्यन्त अंतर्दृष्टि-पूर्ण है। औफ़ी वर्णन करता है कि उनके द्वारा संरक्षित दासों को नए शिल्पों में प्रशिक्षित किया गया था। वे बाइज़ेंटाइन, यूरोप (ईसाई) से श्वेतवर्णीय दास लाये थे और उनके माध्यम से *हसीर* (प्रार्थना करने की कालीन) की बुनाई तथा रफ़ू की दस्तकारी को भारत में शुरू किया गया। नील को मध्य एशिया भेजा जाता था। व्यापारियों द्वारा भी स्वयं के *कारख़ाने* बनाए गए थे। औफ़ी निस्संदेह फ़ारसी भाषी देशों में एक नई शैली की शुरूआत करने वाला था, जो सम्पूर्ण मध्ययुग में अत्यंत लोकप्रिय बनी रही।

15.5.2 अब्दुर रज़्ज़ाक़

कमालुद्दीन अब्दुर रज़्ज़ाक़ समरक़ंदी (1413-1482) एक तैमूरी राजदूत था जिसे शाहरुख़ (r. 1405-1447) द्वारा कालीकट के ज़मोरिन (समुद्री/समुरी) शासक के दरबार में भेजा गया और 1442-45 के दौरान विजयनगर शासक के अनुरोध पर वह विजयनगर भी गया था। रज़्ज़ाक़ ने समुद्री मार्ग से होर्मुज़ से कालीकट तक यात्रा की और फिर कालीकट से विजयनगर तक भी वह मैंगलोर होते हुए तटीय मार्ग से गया था।

वह एक फ़ारसी, तैमूरी और इस्लामी विद्वान था। उसके पिता जलालुद्दीन इशाक़ हेरात में शाहरुख़ के दरबार में *क़ाज़ी* और *इमाम* थे; बाद में, अपने पिता की मृत्यु (1437) के बाद उसे *क़ाज़ी* बना दिया गया। उसने अपने भारत भ्रमण को अपनी *मतला-उस सदाइन वा मजमा-उल बहरीन* में कलमबद्ध किया है। रज़्ज़ाक़ का वृत्तांत मुख्यतः एक यात्रा-वृत्तांत है। उसने जो देखा और समझा, उसका ही वह वर्णन करता है। चूँकि उसका विवरण आँखों-देखा हाल बताता है, इसलिए जो कुछ वह वर्णन करता है, वह काफ़ी हद तक तथ्यात्मक रूप से सही है। वह अपने द्वारा देखे गए स्थानों के समाज और संस्कृति का गहन पर्यवेक्षक है। हालांकि, वह कालीकट में निवास करने वाले लोगों से उतना प्रभावित प्रतीत नहीं होता है, लेकिन वह विजयनगर के राजधानी-शहर (वर्तमान हम्पी) की भव्यता का एक विशद् विवरण प्रस्तुत करता है।

रज़्ज़ाक़ पंद्रहवीं शताब्दी में हिंद महासागर में फलते-फूलते भारतीय व्यापार और नौवहन का प्रशंसक है। जहाँ वह कालीकट की सुरक्षित बंदरगाह के रूप में प्रशंसा करता है और सामान्य रूप से बंदरगाह और शहर की सुरक्षा की भी प्रशंसा करता है कि कोई भी अपने माल को खोने के डर के बिना यहाँ उसे छोड़ सकता है; वहीं वह अफ़सोस जताता है कि आम तौर पर लोग 'नग्न' रहते हैं और बहुविवाह की रीति का पालन करते हैं। वह दो मस्जिदों की उपस्थिति के साथ मुस्लिम आबादी की व्यापक उपस्थिति को दर्ज करता है, जो कि सभी को प्राप्त धार्मिक स्वतंत्रता का संकेत है। वह यह भी बताता है कि यहाँ अधिकांश मुस्लिम शाफ़ी इस्लामी न्याय-शास्त्र के अनुयायी हैं। यह दिलचस्प है क्योंकि अधिकांश भारत में हनफ़ी फ़िरक़े का वर्चस्व रहा है। आज तक भी इस क्षेत्र में शाफ़ी न्याय-शास्त्र का वर्चस्व बना रहा है। वह यह भी बताता है कि सीमा शुल्क लगाने के मामले में कोई भेद नहीं किया जाता था और बिना राष्ट्रीयता को ध्यान में रखे यह सभी लोगों पर समान रूप से आरोपित किया जाता था। वह गायों के प्रति श्रद्धा; गाय के मारे जाने पर मृत्युदंड दिए जाने का उल्लेख भी करता है।

विजयनगर का वर्णन करते हुए वह अत्यंत उत्सुक नज़र आता है। वह ईरान के अपने पाठकों के लिए लिख रहा था इसलिए वह समझाने के लिए अक्सर चीज़ों की तुलना ईरान की वस्तुओं से करता है। देवराय द्वितीय (r. 1426-1446) के काल में विजयनगर साम्राज्य की विशालता का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि साम्राज्य गुलबर्गा से श्रीलंका तक और बंगाल से मालाबार तक के क्षेत्र में विस्तृत था। वह विजयनगर साम्राज्य में 300 बंदरगाहों की उपस्थिति का बढ़ा-चढ़ा कर दावा करता है।

वह शहर की क़िलेबंदी से प्रभावित था और राजधानी की नगर योजना का एक सचित्र खाका प्रस्तुत करता है जो अन्यथा अन्य स्रोतों में उपलब्ध नहीं है। उसका विवरण केवल घटनाओं का वर्णन नहीं है, बल्कि वह घटनाओं के पीछे के तर्क पर भी ध्यान देता है। विजयनगर शहर की क़िलेबंदी को उसने स्पष्ट रूप से 'आक्रमणों के खिलाफ़ सुरक्षा प्रदान करने' के उद्देश्य से जोड़ा है। अब्दुर रज़्ज़ाक़ वर्णन करता है:

> बिदजनगर (Bidjanagar) शहर ऐसा है कि आँख की पुतलियों ने कभी भी इसके जैसा स्थान नहीं देखा होगा, और इन बुद्धिपूर्ण कानों ने कभी नहीं सुना है कि दुनिया में इसकी बराबरी करने वाला भी कुछ अस्तित्व में है। इसे इस तरह से बनाया गया है कि सात दुर्ग (citadels) और इतनी ही दीवारें एक दूसरे को घेरे हुए हैं।

जहाँ दुर्गों की बाहरी परतों/स्तरों में फ़सलों से भरे खेत और उद्यान और उपवन शामिल थे, वहीं अंदर के तीसरे से सातवें स्तर अत्यधिक भीड-भाड़ के क्षेत्र थे। ये बाज़ारों, घरों और राजा के महल से आच्छादित थे। दुर्ग पहाड़ी की चोटी पर था और पूरे शहर में इस पर नज़र रखने हेतु बुर्ज बने हुए थे। प्रत्येक दुर्गीकृत दीवार के बीच में खेतों, बगीचों और घरों के निर्माण हेतु स्थान थे। वह वर्णन करता है कि सम्पूर्ण शहर में तुंगभद्रा नदी से जलापूर्ति होती थी।

वह धन से सम्पन्न बाज़ारों की उपस्थिति की प्रशंसा करता है: 'बाज़ार बेहद चौड़े और लंबे हैं। फूलों के विक्रेताओं के पास दुकानों के सामने ऊँचे समतल स्थान हैं... हर शिल्प के व्यवसायी एक दूसरे की बगल में दुकान लगाए रहते हैं। जौहरी खुलेआम बाज़ार में मोती, हीरे, माणिक्य और पन्ना बेचते हैं...' वह उस क्षेत्र में प्रचलित सामान्य समृद्धि की भी प्रशंसा करता है: 'इस क्षेत्र के सभी धनी और आम लोग, यहाँ तक कि बाज़ार के शिल्पकार, अपने गले में, अपने कानों में, अपनी बाहों, कलाई और उंगलियों पर मोती और गहने पहनते हैं।' वह राजकीय 'गजशाला' का सचित्र वर्णन प्रस्तुत करता है। वह लिखता है कि यहाँ हाथियों का प्रजनन भी किया जाता था। हाथियों को पकड़ने की प्रक्रिया

का उसका वर्णन भी काफ़ी दिलचस्प है। वह उन गणिकाओं के विशेष आवास-क्षेत्रों की उपस्थिति भी दर्ज करता है जिनसे राज्य कर वसूला करता था।

अब्दुर रज़्ज़ाक़ द्वारा वर्णित कुछ राजनीतिक घटनाएँ दिलचस्प हैं। वह देवराय द्वितीय के भाई (अब्दुर रज़्ज़ाक़ के पश्चात् विजयनगर राज्य की यात्रा करने वाला यात्री नूनिज़ सूचित करता है कि वह उसका भतीजा था) द्वारा उसके प्राणों पर हुए हमले का सचित्र वर्णन प्रस्तुत करता है। वह बंगाल की राजनीति में विजयनगर के शासकों के हस्तक्षेप के बारे में भी सूचित करता है, जहाँ वह लिखता है कि देवराय द्वितीय ने बंगाल में हस्तक्षेप किया और वहाँ के शासक को जौनपुर के मामलों में दख़ल देने पर गंभीर परिणाम भुगतने की चेतावनी दी, इसने स्पष्ट रूप से बंगाल के सुल्तान को डरा दिया और उसने अंततः वहाँ से वापस लौटने का फैसला किया। वह विजयनगर साम्राज्य पर बहमनी सुल्तान के हमले का भी वर्णन करता है, जिसका देवराय द्वितीय द्वारा सफलतापूर्वक प्रतिकार किया गया और अंतिम रूप से इसका परिणाम रायचूर और मुद्गल पर विजयनगर के शासक के आधिपत्य में निकला।

रज़्ज़ाक़ द्वारा कुछ विलक्षण और विस्तृत अवलोकन भी किए गए हैं, विशेष रूप से विजयनगर साम्राज्य में उपयोग की जाने वाली दो प्रकार की लेखन-शैलियों और 'स्वतंत्र मुद्रा टंकण' व्यवस्था के प्रचलन की प्रकृति का वर्णन, शाही टकसाल से संबंधित विवरण और पान के पत्ते खाने तथा इन्हें भेंट करने की प्रथा और इसके फायदे का सचित्र वर्णन। इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण है *महानवमी* उत्सव और उसके जुलूसों के बारे में उसका विस्तृत विवरण और एक 'बाह्य' दर्शक के रूप में इसका विशिष्ट वर्णन। वह न केवल राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्रों से आए *नायकों* की सभा का वर्णन करता है बल्कि गायकों, नर्तकियों और कलाबाज़ों की उपस्थिति भी दर्ज करता है। नर्तकियाँ, रज़्ज़ाक़ लिखता है, ज़्यादातर खूबसूरत तरुणी युवतियाँ थीं। वह यह भी बताता है कि विजयनगर में मौजूद कुछ होर्मुज़-वासियों ने यह अफ़वाह फ़ैलाई कि मैं 'महामहिम' (शाहरुख़) का राजदूत नहीं हूँ।

बोध प्रश्न-4

1) क्या आपके विचार से औफ़ी ने अपने जीवन के बाद के चरण में कुबाचा के संबंध में अपने मत में बदलाव किया था? क्यों? टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

2) कालीकट के निवासियों के संबंध में अब्दुर रज़्ज़ाक़ का क्या अवलोकन था?

....

....

....

3) विजयनगर राज्य के संबंध में अब्दुर रज़्ज़ाक़ की अवधारणा के विषय में लिखिए।

....

....

....

15.6 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि भारत आने वाले विदेशियों के संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत अपने आप में ऐतिहासिक विवरण नहीं हैं। उदाहरण के लिए, जैसा कि पहले चीनी बौद्ध तीर्थयात्रियों फ़ाह्यान और ह्वेनसांग से संबंधित भागों में तर्क दिया गया है, उनके इतिवृत्तांतों के पीछे प्राथमिक उद्देश्य स्वदेश में बौद्ध भक्तों और अनुयायियों के समक्ष बुद्ध से जुड़े स्थानों और घटनाओं की एक व्यापक छवि को प्रस्तुत करना था। इसलिए, हम उनके विवरणों में भारत और यहाँ के लोगों के विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्म विवरण या सचित्र प्रस्तुतिकरण नहीं पाते हैं। दूसरा, जब वे किसी ऐतिहासिक विषय के बारे में विवरण प्रस्तुत करते हैं तो उनका विवरण कल्पनाओं और अतिशयोक्ति से भरा होता है या

वे इससे मुक्त नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, नालंदा के शैक्षणिक-मठवासी संस्थान में 10,000 छात्र-भिक्षुओं के रहने का ह्वेनसांग का वर्णन पुरातात्विक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित नहीं होता है। इसलिए, उनके लेखन को कुछ हद तक सावधानी के साथ देखा और उस पर विचार किया जाना चाहिए और वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक इतिहास प्राप्त करने के लिए अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से इनके वृत्तांतों का मिलान और इन्हें प्रमाणित किया जाना चाहिए। विदेशियों के विवरण कभी-कभी ग़लत और काल्पनिक विवरण भी देते हैं। उदाहरण के लिए, मेगस्थनीज़ जाति को ग़लत ढंग से व्यवसाय से संबंधित समझ लेता है और सात जातियों की सूची प्रस्तुत करता है। इसलिए, उन्हें हमेशा जस-का-तस नहीं स्वीकार किया जा सकता है। किंतु इससे वे ऐतिहासिक लेखन के लिए अनुपयोगी नहीं बन जाते हैं, परिश्रम और सतर्कता के साथ उनका अनुशीलन और अध्ययन किया जाना चाहिए।

अरब जगत के साथ भारत के संपर्क इस्लाम के उदय के बहुत पहले से ही रहे हैं। इनके बीच घनिष्ठ व्यापारिक गतिविधियों की सूचना मिलती है और अरब व्यापारी भारतीय माल को यूरोपीय बाज़ारों में ले जाते थे। भारत के पश्चिमी तट पर कई अरब उपनिवेश (colonies) थे। इसी प्रकार, अरब प्रायद्वीप में उबुल्ला क्षेत्र को वहाँ बसे भारतीयों के कारण *अरज अल-हिंद* के रूप में जाना जाता था। बग़दाद में अल-मामून द्वारा *बैत-उल हिकमा* की स्थापना के साथ ही भारतीय विज्ञान और धर्म में अरबों की रुचि कई गुना बढ़ गई। इस इकाई में अल-बालादुरी से लेकर अली कूफ़ी, अल-बिरूनी, इब्न बतूता, औफ़ी और अब्दुर रज़्ज़ाक़ तक, अरबों और ईरानियों की भारत की अवधारणाओं को चिह्नित करने का प्रयास किया गया है। एक-दूसरे के संपर्क में आने के शुरुआती चरणों में इस्लाम और हिंदू धर्म की दो अलग-अलग परंपराओं के आत्मसातीकरण की प्रक्रिया का संकेत मिलता है। इससे यह भी पता चलता है कि प्रारम्भिक अवस्था में सामान्यतः एक-दूसरे की परम्पराओं, विज्ञानों, दर्शन और धर्म को जानने-समझने की जिज्ञासा का वातावरण था। एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता और धार्मिक स्वतंत्रता का माहौल था जिसकी अरब और ईरानी यात्रियों द्वारा बहुत सराहना की गई थी।

15.7 शब्दावली

'चांडाल' : 'अस्पृश्यों' या 'अन्त्येजयों' की विशेष श्रेणी जो *चतुर्वर्ण* व्यवस्था के बाहर थे तथा *शास्त्रों* में जिन्हें बसावट (ग्राम या नगर) के बाहर या परिधि पर रहने का निर्देश था

शास्त्र/धर्मशास्त्र : प्राचीन भारतीय नियमावलियाँ/निर्देश-संग्रह, जिनमें नैतिक और सामाजिक आचरण के वे नियम तथा आचार संहिताएँ होती थीं, जिनका हिंदुओं द्वारा पालन, अनुकरण और व्यवहार किया जाना होता था। *मानव धर्मशास्त्र* (आमतौर पर *मनुस्मृति* के नाम से विख्यात) इनमें से एक है। पी. वी. काणे ने अपनी पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र* (पाँच खंडों तथा आठ भागों में) में इन पर विस्तार से शोध किया है

वर्ण : शाब्दिक रूप से रंग (त्वचा का); आरम्भिक रूप से यह संकल्पना प्राचीन भारत में व्यावसायिक समूहों का संकेत करती थी जिसने बाद में जाति के रूप में विकसित और ठोस रूप ग्रहण किया। जातियों की विशेषता जन्म से परिभाषित होना तथा सगोत्र विवाह (endogamy) की व्यवस्था है

***गेनिज़ा* दस्तावेज़** : शब्दशः भण्डारकक्ष; यह 870 सी ई से 19वीं शताब्दी तक के काल से संबंधित लगभग 400,000 यहूदी पांडुलिपियों के अवशेषों और फ़ातिमिद प्रशासन के दस्तावेज़ों का संग्रह है, जो फ़ुस्तात (पुराने काहिरा शहर, मिस्र) के बेन एज़्रा सिनेगॉग में संरक्षित थे

कुरुलताई : शब्दशः एक सभा; मंगोल ख़ानेत की राजनीतिक और सैन्य सभा। इसके पास मंगोल *ख़ाक़ान* को चुनने का अधिकार था

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 15.2.1

2) देखें उप-भाग 15.3.1 और 15.3.2

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 15.4.1

2) देखें उप-भाग 15.4.2

3) देखें उप-भाग 15.4.2

बोध प्रश्न-3

1) देखें उप-भाग 15.4.3

2) देखें उप-भाग 15.4.4

3) देखें उप-भाग 15.4.5

बोध प्रश्न-4

1) देखें उप-भाग 15.5.1

2) देखें उप-भाग 15.5.2

3) देखें उप-भाग 15.5.2

15.9 संदर्भ ग्रंथ

अहमद आसिफ़, मनान, (2016) *अ बुक ऑफ कन्क्वेस्टः द चचनामा एंड मुस्लिम ओरिजंस इन साउथ एशिया* (कैम्ब्रिज एवं मैसाचुसेट्सः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

बोसवर्थ, ए.बी., (1996) 'द हिस्टोरिकल सेटिंग ऑफ मेगस्थनीज़ इंडिका', *क्लासिकल फिलोलॉजी,* भाग 91, नं. 2 (अप्रैल), पृ. 113-127.

ब्राउन, ट्रक्सडेल एस., (1955) 'द रिलायबिलिटी ऑफ मेगस्थनीज', *द अमेरिकन जर्नल ऑफ फ़िलॉलॉजी,* भाग 76, नं. 1, पृ. 18-33.

गिब, एच. ए. आर., (1929) *इब्न बतूताः ट्रेवल्स इन एशिया एंड अफ्रीका 1325-1354* (लंदनः रूटलेज और केगन पॉल).

हुसैन, महदी, (1975) *रेहला ऑफ़ इब्न बतूता* (बड़ौदाः बड़ौदा विश्वविद्यालय प्रकाशन).

खान, एम. एस., (1983) 'ए ट्वेल्थ सेंचुरी अरब अकाउंट ऑफ इंडियन रिलिजंस एंड सेक्ट्स', *अरेबिका,* जून, टी. 30, फेसिमिली, 2, पृ. 199-208.

लॉरेंस, ब्रूस बी., (1976) 'अल-बिरूनी'स अप्रोच टू द कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ इंडियन कल्चर', *बिरूनी सिंपोजियम,* एहसान यारशेटर और डेल बिशप द्वारा संपादित (कोलंबियाः ईरान सेंटर, कोलंबिया यूनिवर्सिटी).

निजामी, खालिक अहमद, (1994) 'अर्ली अरब कॉन्टैक्ट विद साउथ एशिया', *जर्नल ऑफ इस्लामिक स्टडीज,* भाग 5:1, पृ. 52-69.

निज़ामी, ख़ालिक अहमद, (1983) *ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरियंज ऑफ़ इंडिया* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल प्रकाशक).

शर्मा, आर. एस., (2018 [2005]) *इंडिया'ज़ एनशियंट पास्ट* (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

सिद्दीकी, इक़्तिदार हुसैन, (2014) *इंडो-फ़ारसी हिस्टोरियोग्राफ़ी टू द फॉरटींथ सेंचुरी* (दिल्लीः प्राइमस बुक्स).

सिद्दीकी, इक़्तिदार हुसैन, (2003) 'अबू रेहान अल-बरुनीः हिज लाइफ एंड वर्क्स', *मिडिवल इंडियाः एसेज़ इन इंटेलेक्चुअल थॉट एंड कल्चर*, भाग 1 (दिल्लीः मनोहर).

सिंह, उपिंदर, (2008) *अ हिस्ट्री ऑफ़ ऐनशिएंट एंड अर्ली मिडिवल इंडियाः फ्राम द स्टोन एज टू द 12th सेंचुरी* (नई दिल्लीः पियर्सन लॉन्गमैन).

थापर, रोमिला, (2002) *अर्ली इंडिया फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए डी 1300* (नई दिल्लीः पेंगुइन).

15.10 शैक्षणिक वीडियो

अर्लीएस्ट वैस्टर्न अकाउंट ऑफ़ इंडिया + कास्ट सिस्टम//300 बी सी मेगस्थनीज़//एंशिएंट प्राइमरी सोर्स

https://www.youtube.com/watch?v=pMgQb6Epmrg

ग्रीक, चाइनीज़, मेगस्थनीज़, ब्राह्मन्स, श्रमन्स, पतंजलि एंड अलबरेनू – पार्ट 6

https://www.youtube.com/watch?v=ejGd5i66VJI

मार्को पोलो एंड इब्न बतूता

https://www.youtube.com/watch?v=0_9HSNa39kI

ग्रेट वॉयजेज़ः ट्रॅवलर्स टिप्स फ्रॉम द फॉरटीन्थ सेंचुरीः द डिटूर्स ऑफ़ इब्न बतूता

https://www.youtube.com/watch?v=0v23vZqs8RI

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 16 यूरोपीय यात्रा-वृत्तांत*

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 अफ़ानासी निकितिन
16.2.1 भारत और यहाँ के निवासी
16.2.2 नगर तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ
16.3 डोमिंगो पायस तथा फ़र्नाओ नूनिज़
16.3.1 डोमिंगो पायस
16.3.2 फर्नाओ नूनिज़
16.4 सर टॉमस रो
16.5 फ्रांसिस्को पेल्सार्ट
16.6 जीन बैप्टिस्ट टैवर्नियर
16.7 फ्रंस्वा बर्नियर
16.8 निकोलो मनुची
16.9 सारांश
16.10 शब्दावली
16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.12 संदर्भ ग्रंथ
16.13 शैक्षणिक वीडियो

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समर्थ होंगेः

- भारत के विषय में यूरोपीय यात्रियों के लेखन में अभिव्यक्त विभिन्न यूरोपीय दृष्टिकोणों को समझने में,
- उनके भारत-संबंधी विवरणों में अंतर्निहित पक्षपातों तथा सांस्कृतिक मनोग्रंथियों का परीक्षण करने में,
- यह विश्लेषण करने में कि किस प्रकार उनकी निजी स्थिति ने भारतीय सभ्यता, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक रीतियों तथा समाज के उनके विवरणों को प्रभावित किया,
- भारत के अतीत के पुनर्निर्माण में उनके पर्यवेक्षण के महत्व का आकलन करने में, और
- समय में परिवर्तन के साथ-साथ उनके दृष्टिकोणों में क्रमिक विकास को समझ पाने में।

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम यह चर्चा करेंगे कि किस प्रकार विभिन्न यूरोपीय यात्रियों ने पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक अपने लेखन में भारत का चित्रण प्रस्तुत किया। इनमें से अधिकांश यूरोपीय स्वनिर्मित थे, 'अपने व्यवसाय में वे कैथोलिक पादरी तथा तोपख़ाने के जानकारों से लेकर अनुवादक, जौहरी, चित्रकार, निर्माता तथा व्यापारी, आदि थे'। उनकी रचनाएँ भारतीय उपमहाद्वीप

* **श्री जितेश कुमार जोशी, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**

के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवेश के कई पहलुओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। जहाँ कुछ विद्वानों ने उनके द्वारा किए गए भारत के, या पूर्व के, वर्णनों को सईद की प्राच्यवाद की अवधारणा के अंदर रखा है, जिसमें पूर्व की छवि को पश्चिम की छवि के ठीक उलट रचा जा रहा था, अर्थात् 'दूसरे' की कमतरी का एक बोध हमेशा ही इन विवरणों का हिस्सा रहा था। वहीं सुब्रह्मण्यम यह तर्क देते हैं कि एक ऐसी दुनिया में 'जहाँ-जब प्रत्यक्ष विजय और प्रभुत्व नियम नहीं था (जिस प्रकार मेक्सिको तथा पेरू में हुआ था) संस्कृतियाँ अक्सर एक **सीमित संघर्ष** की स्थिति में आमने-सामने आईं' (सुब्रह्मण्यम 2008: 37)। इसका तात्पर्य है कि यद्यपि इन दो संसारों के बीच सद्भाव तथा परस्पर समझ का अभाव रहा था, किंतु इससे यह संकेत नहीं मिलता कि यूरोपीय किसी श्रेष्ठता की स्थिति में थे।

लम्बे समय तक यह भी माना जाता रहा कि भारतीयों के मुकाबले यूरोपीय यात्री मध्यकालीन तथा प्राक्-आधुनिक भारत का वर्णन करने में अधिक ईमानदार तथा सटीक रहे हैं। इस मत के अनुसार भारतीय 'इतिहास-बोध से हीन', 'पारलौकिक' तथा दुनियावी विषयों के प्रति उदासीन रहे थे और इस कारण अपने जीवन का बखान करने में असमर्थ थे (वनिना 2013: 269)। विशेषकर, भारतीय भाषाओं के ग्रंथों को ऐतिहासिक शोधों में कोई महत्व नहीं दिया गया था, हालांकि फ़ारसी इतिवृत्तों को विश्वसनीय माना जाता था।

यूरोपीय यात्रा-वृत्तांतों को कम्पनी दस्तावेज़ों के साथ उत्तर-मध्यकालीन तथा प्राक्-आधुनिक कालीन भारत के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय सामग्री माना जाता है। इन यात्रियों के मातृ-देश की सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि तथा किसी ख़ास भारतीय परिस्थिति में उनकी प्रतिष्ठा का उनके दृष्टिकोण पर पड़े प्रभाव को अनदेखा किया जाता रहा। इन यात्रियों के विवरणों पर विचार करते हुए जिस अन्य तथ्य को ध्यान में नहीं रखा गया, वह था समय के साथ उनके दृष्टिकोणों में आया परिवर्तन जिसका कारण उन स्थितियों में हुआ बदलाव था जिनमें वे यात्रा कर रहे थे। आरम्भिक सोलहवीं शताब्दी में भारत आने वाले यात्रियों ने एक राजनीतिक बिखराव की स्थिति अपने सम्मुख पाई थी, जहाँ लगभग आधा दर्जन राज्य स्थान-विशेष पर प्रभुत्व बनाने के लिए परस्पर संघर्षरत थे, इनमें विजयनगर का राज्य सबसे शक्तिशाली राज्य था, जिसके बारे में पुर्तगाली यात्रियों, जैसे डोमिंगो पायस (Domingo Paes) तथा फ़र्नाओ नूनिज (Fernao Nuniz), ने विस्तार से लिखा है। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुग़ल साम्राज्य का उदय हो रहा था जिसने सत्रहवीं शताब्दी में भारतीय उपमहाद्वीप में अपना प्रभुत्वशाली स्थान बना लिया था, अतः इस समय के यूरोपीय यात्रियों का सर्वाधिक ध्यान मुग़ल राजनीतिक-क्षेत्र पर था। जहाँ तक धर्म का संबंध है, यूरोपीय यात्री दो संपूरक तरीकों से इसे देख रहे थे, एक ओर तो उन्होंने अपने विश्वास और भारतीयों के विश्वासों के बीच समानांतर खोजने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर, इनके बीच भिन्नता को स्पष्ट किया। यह चित्रण सम्पूर्णता में उनके धर्म की सत्यता और दूसरों के विश्वासों की व्यर्थता को सामने लाने का उद्देश्य रखता था।

पहले भाग में हम रूसी व्यापारी अफ़ानासी निकितिन (Afanasy Nikitin) के भारत-संबंधी अवलोकनों की चर्चा करेंगे, उसकी भारत की समझ केवल दक्खन तक सीमित थी, विशेषकर बीदर तक। उसके बाद, अगले भाग में, विजयनगर साम्राज्य के संबंध में दो पुर्तगाली यात्रियों के विवरणों की चर्चा की जाएगी, इनमें से एक डोमिंगो पायस है जो गोआ के पुर्तगाली क्षेत्र से व्यापारियों के समूह के साथ विजयनगर की यात्रा पर आया था और दूसरा पुर्तगाली यात्री फ़र्नाओ नूनिज़ घोड़ों का व्यापारी था। ये दोनों ही यात्री सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विजयनगर साम्राज्य में आए थे। अगले भाग में सर टॉमस रो (Thomas Roe) के दृष्टिकोण को चर्चा की जाएगी जो सोलहवीं शताब्दी के दूसरे दशक में जहाँगीर के दरबार में (1616-18), ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए व्यापारिक अधिकार प्राप्त करने हेतु, इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम का पत्र लेकर आया था। अगला भाग फ़्रांसिस्को पेल्सार्ट (Francisco Pelsaert) पर केंद्रित है, जो एक डच फ़ैक्टर (Factor) था तथा कुछ समय तक आगरा में रुका था, उसका विवरण उत्तर तथा पूर्वी भारत के व्यापार-तंत्रों, उत्पादन तथा विनिर्माण केंद्रों की जानकारियों के संदर्भ में काफ़ी सम्पन्न है। टैवर्नियर (Tavernier) तथा बर्नियर (Bernier) दोनों ही फ्रांसीसी थे, इनमें से पहला एक व्यापारी था तथा बहुमूल्य रत्नों का विशेषज्ञ था। और दूसरा उत्तर-गैलीलियो कालीन बौद्धिक संसार से संबंध रखता था और उसके लेखन ने भारत के मुग़ल बादशाह की छवि को एक प्राच्य निरंकुशतावादी शासक के रूप में गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अंतिम भाग

निकोलो मनूची (Nicolo Manucci; मृ. 1720) पर विचार करता है, जिसके विवरण सबसे दिलचस्प, विस्तृत तथा चित्ताकर्षक हैं। उसने इन सभी यात्रियों की अपेक्षा, भारत में सबसे लम्बा समय बिताया था, और आरम्भिक अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में पांडिचेरी (पुदुचेरी) में उसकी मृत्यु हुई थी।

16.2 अफ़ानासी निकितिन

अफ़ानासी निकितिन (Afanasy Nikitin; मृ. 1472) एक रूसी व्यापारी था जो पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत आया था। इस व्यापारी ने पहले ही क्रीमिया, जॉर्जिया, एशिया माइनर तथा वालेशिया (Walachia) में व्यापार में अपनी किस्मत आज़माई थी। उसने 1466 में त्वेर, रूस से अपनी यात्रा शुरू की तथा 1469 में वह दीव पहुँचा। उसका यात्रा-वृत्तांत वर्तमान में *वॉयजेस बियोंड थ्री सीज़* के नाम से विख्यात है। पहले वह वर्तमान अजरबाइजान (Azerbaijan) में स्थित शेरवान गया वहाँ से बाकू होते हुए वह ईरान के रास्ते भारत आया, ऐसा देश जिसने उसका अत्यधिक ध्यान खींचा था। 'निकितिन ने भारत आने की कोई पूर्व योजना नहीं बनाई थी, जैसे कि अन्य यूरोपीय यात्रियों ने किया, यह एक सांयोगिक यात्रा थी, और निकितिन अपने विवरण में यह स्वयं स्पष्ट करता है' (श्लापेंटोख 2012: 170)। जिस समूह के साथ वह यात्रा कर रहा था उसे तार्तारों द्वारा लूट लिया गया और शेरवान के शासक द्वारा कोई भी सहायता न मिलने पर उसने ईरान जाने का निर्णय किया जहाँ से वह होर्मुज गया, वहीं उसने भारत में घोड़े के व्यापार के महत्व के संबंध में सुना, इसलिए उसने एक घोड़ा खरीदा कि उसे भारत में बेचकर कुछ लाभ कमा सके। इस प्रकार मुस्लिम तार्तारों के साथ उसकी मुठभेड़ों ने मुस्लिमों के प्रति उसका रवैया नकारात्मक बना दिया था, जिसका स्पष्ट प्रभाव उसके यात्रा-वृत्तांत में देखा जा सकता है। 'उसने भारत को न केवल एक अजनबी और विचित्र देश के रूप में देखा, बल्कि स्पष्ट रूप से अनैतिक या कम से कम विचित्र आदतों के देश के रूप में देखा था' (श्लापेंटोख 2012:172)। यहाँ हम संक्षेप में भारतीय लोगों, संस्कृति, धर्म तथा समाज के विषय में उसके अवलोकन की चर्चा करेंगे।

16.2.1 भारत और यहाँ के निवासी

निकितिन बड़े विस्तार के साथ भारतीय लोगों के परिधान तथा बनावट की चर्चा करता है। एक ओर तो वह चौल के राजकुमार तथा राजकुमारी की वेशभूषा का विस्तृत विवरण देता है, जहाँ वह सबसे पहले पहुँचा था; दूसरी ओर, वह उच्च वर्गीय लोगों के सेवकों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्रों का भी वर्णन करता है, वह इन दोनों के बीच बहुत अंतर नहीं देखता है, केवल राजकुमार के सिर पर एक अतिरिक्त वस्त्र तथा राजकुमारियों के कंधों पर लिपटे हुए वस्त्र के अलावा। यद्यपि, जुन्नार में सर्द मौसम के समय पहने गए वस्त्रों का उसने विस्तार से वर्णन किया है:

> सर्दी में लोग एक वस्त्र अपने कूल्हों पर बाँधते हैं, दूसरा अपने कंधे पर और तीसरा अपने सिर पर धारण करते हैं। इस समय राजकुमार और कुलीन लोग पतलून और कमीज़ तथा कोट पहनते हैं, और एक वस्त्र अपने कंधों पर डालते हैं तथा एक अन्य कपड़े से स्वयं को लपेट लेते हैं, तीसरा वस्त्र वह अपने सिर को बांधने के लिए प्रयुक्त करते हैं।
>
> **बेक्लोव 1950: 15**

वह भारतीय लोगों के श्याम वर्ण का वर्णन करते समय स्वयं के श्वेत वर्ण के प्रति सचेत भी नज़र आता है।

निकितिन ने हिंदू जनसंख्या के धार्मिक व्यवहारों का भी अवलोकन किया। वह कहता है कि जब उसने लोगों को बताया कि वह मुस्लिम नहीं है बल्कि ईसाई है, जो ईसा मसीह पर विश्वास करता है, उन्होंने उससे कुछ भी नहीं छुपाया, अपनी प्रार्थना, अपने भोजन, अपने व्यवसाय और अपने जीवन के अन्य पहलुओं के विषय में। 'यदि वह लोगों के साथ आसानी से घुलमिल पा रहा था, इसका कारण यह नहीं था कि वह मुस्लिम नहीं था, बल्कि उसका स्वयं का विश्वास मुस्लिमों की अपेक्षा ग़ैर-मुस्लिमों पर अधिक था। वह उनके देवता को *बुत* कहता है और उनके आदम (Adam) पर विश्वास का उल्लेख भी करता है, संभवतः या तो वह आत्मा को आदम समझ रहा था या उसने किसी से मनु की कथा सुनी होगी। भारत में कुल 84 मत हैं और वे सभी *बुत* को मानते हैं, इनमें से एक मत के लोग दूसरे के साथ खाना-पीना और विवाह का संबंध नहीं रखते हैं, कुछ मांस, पक्षी, मछली और अंडे खाते हैं, लेकिन कोई भी गाय का मांस नहीं खाता है' (बेक्लोव 1950: 26)।

बीदर से वह श्री-शैलम के तीर्थस्थान पर भी गया, जिसे उसने *पर्वत* कहा है तथा इसे 'काफ़िरों के जेरूसलम' के रूप में वर्णित किया है, लेकिन यहाँ पत्थर से बने हुए विशाल मंदिर की वह अत्यंत प्रशंसा करता है जो अत्यधिक अलंकृत था तथा इसके मूर्ति शिल्प के उत्कृष्ट नमूनों की उसके द्वारा विस्तार से चर्चा की गई है। निकितिन ने इसके देवता का उल्लेख *बुत* के रूप में किया है, न कि मूर्ति को वह *बुत* कहता है। लेकिन उसे यह समझ थी कि ये मूर्तियाँ इस देवता-*बुत* के कई रूपों का प्रतीक थीं (बेक्लोव 1950: 277)। वनीना का यह तर्क है कि अधिकांश यूरोपीय यात्रियों द्वारा हिंदू धर्म की संकल्पना को समझने में असमर्थ रहने का कारण उनका भारतीय भाषाओं का अज्ञान था।

16.2.2 नगर तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ

वह विशेष रूप से चौल, जुन्नार, बीदर, गुलबर्गा, इत्यादि का वर्णन करता है। उसने इनके किलों की भव्यता, संरचना तथा सुरक्षा व्यवस्था की विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराई है, उसने विभिन्न नगरों के बीच की दूरी या उनके बीच यात्रा करने में लगने वाले समय की जानकारी भी दी है। वह बीदर में सुल्तान के महल का वर्णन इस प्रकार करता है:

> सुल्तान के महल की ओर सात दरवाज़े जाते हैं, प्रत्येक दरवाज़े पर सैकड़ों संतरी और सैकड़ों लेखा-जोखा रखने वाले 'काफ़िर' ('kaffir') तैनात हैं, किंतु ये विदेशियों को दुर्ग में नहीं जाने देते हैं। कुछ उन सबका ब्योरा रखते हैं जो अंदर जाते हैं और कुछ उन सबका जो बाहर निकलते हैं ... बीदर के इस शहर को रात्रि में हज़ार दुर्ग-सैनिकों द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाती है जो घोड़ों पर सवार रहते हैं, शस्त्र से सुसज्जित और प्रत्येक के पास एक मशाल होती है।
>
> **बेक्लोव 1950: 24**

इन नगरों के साथ ही उसने इन नगरों के उत्पादों का भी विशेष उल्लेख किया है जो उसके मार्ग में पड़े थे। कालीकट का वर्णन मुख्य पत्तन (port) के रूप में किया गया है, यद्यपि वहाँ मौजूद समुद्री डाकुओं के ख़तरे का उल्लेख किया गया है। कालीकट में अदरक, लौंग, काली मिर्च, दालचीनी, जायफल तथा कई मसालों के उत्पादन का उल्लेख किया है, साथ ही वहाँ विद्यमान सस्ते ग़ुलामों के बाज़ार का भी। चौल आने से पूर्व वह खंभात गया था, जहाँ उसने लाख और नील का उत्पादन होते देखा था। बीदर घोड़ों, रेशम तथा जरी वस्त्र के व्यापार के लिए विख्यात था। जाड़े के महीने में, जब वह जुन्नार में था, उसने गेहूँ, चने तथा अन्य अनाजों की बुवाई का वर्णन किया है, साथ ही ताड़ की छाल से बनने वाली विशेष शराब का भी उल्लेख करता है। लेकिन वह कहता है कि भारतीय क्षेत्रों की इन वस्तुओं का रूस में कोई महत्व नहीं है, और यदि इनमें से कुछ का हो भी तो इनके व्यापार में कोई लाभ नहीं है, क्योंकि मुस्लिम शासक विदेशियों से उच्च शुल्क वसूल करते हैं।

वह जब मुस्लिम भारत का उल्लेख करता है, तो उसका तात्पर्य बहमनी सुल्तान से है। वह कहता है कि सभी प्रशासनिक पदों पर खुरासानी लोगों का अत्यंत प्रभाव है और उनमें सबसे मुख्य स्थान मलिक-तुज्जार (महमूद गावाँ) का है, इस खुरासानी अमीर के पास दो लाख सिपाही हैं और इसी प्रकार वह मलिक ख़ान (निज़ाम-उल मुल्क) तथा फरत ख़ान की शक्ति का भी उल्लेख करता है। वह बीदर में सुल्तान की भव्य शोभा यात्रा का वर्णन करता है, जिसमें साथ में हाथी, घोड़े, नृतक, बाजे-गाजे तथा सैन्य टुकड़ियाँ चलती थीं:

> सुल्तान अपनी माँ और पत्नी के साथ आनंद पाने हेतु बाहर निकलता है, और उनके साथ दस हज़ार घुड़सवार और पचास हज़ार पैदल सैनिक चलते हैं, और साथ में दो सौ हाथी शस्त्रों से सज्जित हैं। उनके आगे हैं सौ शहनाई वादक तथा सौ नर्तकियाँ और सौ सोने की लगामों से बंधे हुए घोड़े, और सौ बंदर और सौ गणिकाएँ (सभी कुंवारी युवतियाँ)।
>
> **बेक्लोव 1950: 23**

श्लापेंटोख यह कहते हैं कि निकितिन अपने बाद आने वाले यात्रियों से इस अर्थ में भिन्न था कि वह आमजन के बीच आसानी से घुल-मिल गया। जहाँ मुस्लिमों के प्रति उसके मन में घृणा थी, वहीं वह व्यापक ईरानी-इस्लामी सांस्कृतिक व्यवहारों और भाषा-व्यवहार का हिस्सा भी था, जिसे उसके द्वारा प्रयुक्त किए गए *'काफ़िर', बुत, बुतख़ाना* जैसे शब्दों और अरबी में अल्लाह के आह्वान से भी समझा जा सकता है।

बोध प्रश्न-1

1) भारत की धार्मिक प्रथाओं के संबंध में निकितिन का क्या विचार था?

....

....

....

2) भारतीय वाणिज्यिक गतिविधियों के संबंध में निकितन के वर्णन का परीक्षण कीजिए।

....

....

....

16.3 डोमिंगो पायस तथा फ़र्नाओ नूनिज़

इस भाग में हम देखेंगे कि किस प्रकार पुर्तगाली मूल के यात्री सोलहवीं शताब्दी में विजयनगर आए और उन्होंने यहाँ के राज्य, लोगों, उनकी संस्कृति, व्यापार तथा राजनीतिक विकासक्रम के संबंध में जीवंत विवरण उपलब्ध कराया। ये विवरण विजयनगर साम्राज्य के इतिहास की पुनर्रचना हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। एक ब्रिटिश सिविल सेवक रॉबर्ट सीवेल ने *अ फ़ॉरगॉटन एंपायर विजयनगरः कंट्रीब्यूशन टू द हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (1909) की रचना की जिसमें इन विवरणों के दो विस्तृत और ऐतिहासिक जानकारी से भरे वर्णनों के अनुवादों को शामिल किया गया था।

16.3.1 डोमिंगो पायस

डोमिंगो पायस 1520-1522 में विजयनगर आया, जब कृष्णदेवराय वहाँ का राजा था। पायस ने विजयनगर को **नरसिंह का राज्य** कहा है। इस यात्री ने इस नगर के दुर्गीकरण, सड़कों और विभिन्न वस्तुओं के बाज़ारों की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई है, साथ ही इस नगर के मुख्य मंदिरों, जिनमें हंपी में स्थित विरुपाक्ष तथा विट्ठलस्वामी के मंदिर शामिल हैं, का वर्णन किया है। पायस ने *महानवमी* उत्सव का लंबा विवरण प्रस्तुत किया है जिसे *विजय भवन* (*द हाउस ऑफ़ विक्ट्री*) में आयोजित किया जाता था और जिसका समापन नगर के बाहर कुछ दूरी पर सेनाओं के निरीक्षण के साथ होता था। पायस का यह विवरण नागलपुर (हॉस्पेट) में स्थित राजा के महल, कृष्णदेवराय के नए निवास के वर्णन के साथ समाप्त होता है। इनमें से कुछ पर हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

विजयनगरः साम्राज्य की राजधानी

पायस ने विजयनगर के शहर के विशाल आकार की तुलना रोम से की है, जिसकी बहुत बड़ी जनसंख्या थी और शहर के भीतर ही एक लाख आवास निर्मित थे। पायस का इस नगर का विवरण काफ़ी सटीक है और हम्पी में हुए उत्खनन की पुष्टि करता हैः

> राजा ने इसके भीतर एक मज़बूत शहर की स्थापना की थी जिसे दीवारों और बुर्जों से घेरा गया था और इसके प्रवेश पर स्थित द्वार बहुत ही मज़बूत है ... इसकी दीवारें अन्य नगरों के दीवारों की तरह निर्मित नहीं है बल्कि इन्हें बहुत ही सुंदर ढंग से पत्थर की चिनाई के काम से बनाया गया है ... जिसके भीतर इमारतों की मनोहारी श्रृखलाएँ हैं ... जिनकी सपाट छते हैं। इनमें कई व्यापारी रहते हैं तथा यहाँ जनसंख्या की कोई कमी नहीं है क्योंकि कई सम्मानित व्यापारियों को राजा अपने नगरों से यहाँ भेजता है ...
>
> **सीवेल 1991ः 244**

पायस इस नगर के बाज़ारों तथा वहाँ विक्रय के लिए उपलब्ध उत्पादों का वर्णन करता है। पायस ने यह अनुभव किया था कि यह नगर सार्वदेशिक चरित्र लिए हुए था, जहाँ विभिन्न राष्ट्रों के लोग व्यापार के उद्देश्य से निवास कर रहे थे, विशेष रूप से बहुमूल्य रत्नों और हीरों के व्यापार के लिए। यहाँ 'मूर लोगों' (मुस्लिमों) का नगर के एक आख़िरी सिरे पर एक अलग निवास-खंड था और ये मुस्लिम राजा द्वारा उसकी सेवा में नियुक्त किए गए थे। मंदिर के निकट की एक सड़क का वर्णन करते हुए वह उत्तम प्रकार के घरों की श्रृंखलाओं की जानकारी देता है, जिनका संबंध समाज के संपन्न तबकों, माणिक्य, मोती, छोटे मोती, वस्त्र, तथा 'धरती पर मिलने वाली हर तरह की वस्तु' और 'जिसे खरीदने की किसी

को चाह हो', के व्यापारियों से संबंधित थे। 'प्रत्येक शाम एक मेला वहाँ लगता था जिसमें व्यापारी कई प्रकार के साधारण घोड़े, नारंगी और नीबू, और संतरे, और अंगूर और उद्यानों में होने वाले हर प्रकार के उत्पाद तथा लकड़ी बेचते थे; इस सड़क पर आपको सब कुछ मिल सकता है' (सीवेल 1991: 255)।

पायस, नगर प्राचीर (city wall) के बाहर, उत्तर में स्थित, तीन सुंदर मंदिरों का विस्तृत वर्णन करता है। इनमें से एक विठ्ठलेश्वर का मंदिर, दूसरा विरुपाक्ष का मंदिर तथा तीसरे को स्पष्ट नहीं किया गया है। विरुपाक्ष मंदिर को मुख्य मंदिर समझा जाता था और उसने इस मंदिर का बहुत ही विस्तृत विवरण दिया है, इसकी वास्तुकला, इसके अनुष्ठानों, और इसके ईष्टदेव का। वह इस पगोडा (मंदिर) के प्रत्येक संरचनात्मक पहलू का उल्लेख करता है, जैसे मुख्य द्वार की विपरीत दिशा में एक बहुत ही सुंदर सड़क, जिसमें यात्रियों के ठहरने के लिए छज्जे-युक्त घर और छायादार मार्ग, उच्च वर्ग के लोगों के ठहरने के लिए निवास-स्थान, मंदिर में पूजा हेतु आने पर राजा के रुकने का स्थान, पिरामिडाकार (pyramidical) स्तंभ-द्वार, जिस पर स्त्रियों, पुरुषों की आकृतियाँ और मिथकीय दृश्य उत्कीर्ण थे तथा जो एक बहुत बड़े अहाते में खुलता था, इत्यादि, शामिल थे। पायस इस मंदिर की इमारत में दीयों को प्रकाशित करने की व्यवस्था का और एक गोलाकार पाषाण के रूप में इसकी 'मुख्य प्रतिमा' का भी उल्लेख करता है।

पायस ने राजा द्वारा उद्यानों और चावल के खेतों की सिंचाई हेतु निर्मित तालाबों का भी उल्लेख किया है, इनमें से एक का निर्माण दो पहाड़ियों के बीच किया गया था ताकि दोनों तरफ़ की पहाड़ियों से आने वाला पानी इसमें एकत्र हो जाए और इसके अतिरिक्त नालियों के माध्यम से एक झील से भी इसमें पानी लाया गया था। 'इस तालाब के निर्माण के लिए राजा ने एक पहाड़ी को तुड़वाया और इसमें मैंने 15,000 व्यक्तियों को काम करते हुए देखा है, जो चीटियों के समान नज़र आते हैं और आप उस ज़मीन को नहीं देख सकते जिस पर वे चलते हैं। राजा ने इस तालाब के निर्माण कार्य को अपने *नायकों* के बीच बाँटा हुआ था, जिनमें से प्रत्येक का यह कर्तव्य था कि वह देखे व सुनिश्चित करे कि उसके अधीन कार्य करने वाले लोग अपना कार्य कर रहे हैं और इस प्रकार तालाब के निर्माण को पूर्ण किया जा सके' (सीवेल 1991: 245)।

विजय भवन में होने वाला उत्सव

पायस ने 'सितंबर के महीने में' नौ दिनों के लिए होने वाले इस उत्सव का अत्यंत विस्तृत विवरण दिया है। इसकी शुरुआत सुबह घोड़ों और हाथियों के संचलन के साथ होती थी, उसके बाद राजा देवता की मूर्ति को वस्त्रों से बने हुए कक्ष में सजाता था और तब नृत्य प्रदर्शन, कुश्ती की प्रतिस्पर्धा, आतिशबाजी, राजा के *नायकों* के विजय-रथों का संचलन होता था। इस उत्सव में समस्त घोड़ों को राजा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था और मुख्य पुरोहित द्वारा उनका अनुष्ठान के रूप में पूजन होता था। राजा का घोड़ा इस अनुष्ठान का नेतृत्व करता था जिसकी पीठ पर दो राज-छत्र लगे रहते थे। महारानी की सेविकाएँ अपने समस्त जवाहरातों और श्रेष्ठ वस्त्रों के साथ अपने हाथों में स्वर्ण पात्रों को लिए हुए, गलियारे पर चलते हुए निकल जाती थीं। इस उत्सव के बाद राजा अपनी सेना का निरीक्षण करता था। पायस ने उसकी सेना की संरचना तथा शक्ति के संदर्भ में भी जानकारी दी है जिसमें अश्व सेना, पैदल सेना और धनुर्धारी शामिल थे।

राजा तथा उसका व्यक्तित्व

राजा कृष्णदेवराय का वर्णन 'एक मध्यम कद के व्यक्ति और गोरी सूरत तथा मोटा या पतला होने के बजाय अच्छे छरहरे शरीर-सौष्ठव से सम्पन्न व्यक्ति के रूप में की गई है, उसके चेहरे पर चेचक के दाग़ थे'। उसे 'कृष्णराव महाशाह' ('Crisnarão Macação') यानी राजाओं के राजा की उपाधि दी गई है। कृष्णदेवराय की तीन मुख्य रानियाँ थी, जिनके बराबर के अधिकार थे और कुल 12,000 रानियाँ थीं। कृष्णदेवराय द्वारा ओरिया (ओडिशा) पर किए गए आक्रमण का भी उल्लेख किया गया है, और किस प्रकार उसने गजपति शासक को हराया और उसके पुत्र को बंदी बना लिया था तथा बाद में 'ओरिया' राजा की पुत्री से विवाह किया ताकि दोनों राज्यों के बीच शांति स्थापित हो सके। पायस ने विजयनगर राज्य के राजस्व और राजा के *नायकों*, राजा के दरबार में उनकी स्थिति तथा राजा के सापेक्ष उनकी शक्ति के संबंध में भी चर्चा की है।

16.3.2 फ़र्नाओ नूनिज़

फ़र्नाओ नूनिज़ पुर्तगाली अश्व-व्यापारी था, जिसने 1536-37 के बीच अपना विवरण लिखा। वह अच्युतराय के शासनकाल में राजधानी-नगर में था और संभवतः कृष्णदेवराय द्वारा लड़ी गई प्रारम्भिक लड़ाइयों में भी वह मौजूद रहा होगा। यह यात्री विशेष रूप से विजयनगर के इतिहास, इसकी स्थापना, इसके तीन राजवंशों के उत्तरोत्तर शासन और उनके द्वारा दक्खन के सुल्तानों तथा ओडिशा के रायों के साथ लड़े गए युद्धों में दिलचस्पी रखता था। नूनिज़ ने भी *महानवमी* उत्सव का विस्तृत उल्लेख किया है, विशेष रूप से शाही महिलाओं द्वारा पहने गए जवाहरातों तथा राजा की सेवा में कार्यरत हज़ारों महिलाओं का उसका वर्णन उल्लेखनीय है।

विजयनगर साम्राज्य का ऐतिहासिक विवरण

नूनिज़ अपने वृत्तांत की शुरुआत दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ का बिसनाग (विजयनगर से व्युत्पन्न; यहाँ इसका तात्पर्य अनेगुंडी के नगर से है, जो विजयनगर की राजधानी के रूप में स्थापित होने से पूर्व विजयनगर साम्राज्य के संगम वंश की राजधानी थी) के राज्य पर आक्रमण से करता है। यद्यपि नूनिज़ दावा करता है कि उसका वृत्तांत बिसनाग के राजाओं से संबंधित है जिन्होंने 1230 सी ई से शासन करना शुरू किया था, किंतु यह तिथि ग़लत है क्योंकि विजयनगर राज्य 1336 सी ई में अस्तित्व में आया था। साम्राज्य की स्थापना के संबंध में नूनिज़ का विवरण सटीक नहीं है और इसे अन्य स्रोतों से पुष्ट नहीं किया जा सकता है, जिस प्रकार वह दावा करता है कि दिल्ली के सुल्तान ने अनेगुंडी के नगर पर आक्रमण किया, इसके कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं। यह सुविख्यात है कि कंपिली राज्य के दो भाइयों, जिन्हें तुग़लक़ ने बंदी बना लिया था और बाद में जिन्हें सुल्तान ने अपने दक्षिणी अभियानों का सेनानायक बनाया था, उन्होंने विजयनगर राज्य की स्थापना की थी तथा इससे पूर्व अनेगुंडी से उनका कोई संबंध नहीं था।

विजयनगर के ऐतिहासिक विवरण में उसके द्वारा अन्य त्रुटियाँ भी की गई हैं, जैसे सुल्तान द्वारा छह लोगों को बंदी बनाकर अपने साथ ले जाने, जिनमें से एक को विजयनगर का राजा बनाया गया और लोगों ने उसे सहर्ष स्वीकार किया क्योंकि वह उनके ही धर्म को मानने वाला था, इस प्रकार इस संबंध में उसका पूरा वृत्तांत काल्पनिक प्रतीत होता है और इसे सत्य के रूप में मुश्किल से ही स्वीकारा जा सकता है। इस विवरण के अनुसार इस राज्य की स्थापना सुल्तान के प्रयासों से हुई थी। इसके बाद वह विजयनगर (बिसनाग) के शहर की स्थापना की लोकप्रिय कहानी का उल्लेख करता हैः एक बार राजा शिकार के लिए निकला था तब उसने एक हिरण देखा, 'जो शिकारी कुत्तों से दूर भागने के बजाय उनकी ओर दौड़ता हुआ आया और उन सबको काट लिया ... इसे देखकर राजा आश्चर्य से भर गया कि इतने निरीह से जीव ने उन कुत्तों को काट लिया था जिन्होंने पूर्व में उसके लिए शिकार के तौर पर शेर और बाघ को पकड़ा था। इस प्रकार उसने इसे साधारण हिरण के बजाय किसी विलक्षण शक्ति का स्वरूप माना; ... और नदी पर पहुँचकर उसे तट के किनारे एक भ्रमण करता हुआ साधु मिला ... जिसे उसने सारा क़िस्सा बताया ... और उस साधु ने उसे उस स्थान पर भवन निर्मित करवाने, जिसमें वह रह सके, तथा, एक नगर का निर्माण करने को कहा... और राजा ने ऐसा ही किया।'

इस नगर का नाम उस साधु वैदियजुण (Vyadiajuna; विद्यारण्य, प्रख्यात माधवाचार्य जिसे हरिहर और बुक्का का आध्यात्मिक गुरु माना जाता था) के नाम पर रखा गया था। वह यह भी उल्लेख करता है कि हरिहर प्रथम के द्वारा विरुपाक्ष के विशाल मंदिर का निर्माण भी उस साधु के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए किया गया था। उसके बाद यह विवरण उन राजाओं की जानकारी देता है जो साम्राज्य के संस्थापकों के बाद गद्दी पर बैठे और किस प्रकार सालुव वंश के नरसिंह द्वारा सिंहासन पर कब्ज़ा कर लिया गया, जिसके नाम से ही पुर्तगाली विजयनगर को नरसिंह के राज्य के रूप में जानते थे। इसके अगले भाग में तुलुव वंश की स्थापना के विषय में जानकारी दी गई है, यद्यपि इतिहासकारों ने उसके द्वारा कृष्णदेवराय के भाइयों और नरसा *नायक* द्वारा सिंहासन पर कब्ज़ा कर लेने के प्रसंगों को अन्य स्रोतों के आधार पर प्रश्नांकित किया है।

कृष्णदेवराय के सिंहासनारोहण के बाद उसके ओडिगैर (उदयगिरि), रायचूर और मुद्गल अभियानों की विस्तार से जानकारी दी गई है, विशेष रूप से 'यादलशाओ के नगर राचोल' (रायचूर) के संबंध

में, जो बीजापुर के शासक इस्माइल आदिल शाह के अधीन था। नूनिज़ ने इस युद्ध में विस्तार से पुर्तगालियों द्वारा निभाई गई भूमिका का उल्लेख किया है। रायचूर के दुर्ग पर विजय हासिल कर लेने के बाद राजा द्वारा 'कलबरगरा' (गुलबर्गा) पर भी हमला किया गया और वहाँ बंदी रखे गए बहमनी राजाओं के पुत्रों में से एक को 'डिक्वेम (दक्खन) के राज्य का राजा' घोषित किया गया। यद्यपि वह उल्लेख करता है कि बहमनी सुल्तान के पुत्रों को इस्माइल आदिल शाह द्वारा बंदी बनाया गया था किंतु वास्तव में वे अमीर बरीद द्वारा बंदी बनाए गए थे।

देवराय प्रथम द्वारा विजयनगर के शहर में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराने हेतु निर्मित बाँध का भी नूनिज़ द्वारा उल्लेख किया गया है, किंतु वह उसे किसी 'अजाराओ' के साथ संबंधित समझता है, तथापि उसके द्वारा दिया गया विवरण काफ़ी जीवंत और स्पष्टता लिए हुए हैः

> ..राजा इस नगर को और बढ़ाने हेतु तथा राज्य में इसे सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिए पाँच लीग[1] की दूरी पर स्थित एक विशाल नदी के पानी को लाने हेतु कृत-संकल्प था, यह विश्वास करते हुए कि यदि वह उसे नगर के भीतर ले आएगा तो इससे अधिक लाभ होगा और उसने ऐसा ही किया। नदी में विशाल चट्टानों की सहायता से बाँध बनाकर, और इस प्रकार लाए गए जल को वह नगर के उन हिस्सों से ले गया जहाँ वह चाहता था, इसके द्वारा उसने इस नगर में कई उद्यानों और बगीचों तथा हरे-भरे उपवनों की स्थापना की और लता-कुंज लगाए, जिनकी इस देश में भरमार है, और नींबू और संतरे और गुलाब तथा अन्य कई पौधे लगाए गए जो इस देश में अत्यधिक अच्छे फल प्रदान करते हैं।
>
> **सीवेल 1991ः 301**

वह कृष्णदेवराय द्वारा निर्मित तालाब के विषय में भी जानकारी देता है, इस संबंध में हमने पायस के विवरण का ऊपर उल्लेख किया है। लेकिन नूनिज़ उन पुर्तगाली राज-मिस्त्रियों का भी उल्लेख करता है जिन्हें राजा ने आमंत्रित किया था तथा गोवा के गवर्नर ने इसी आधार पर जाओ डेला पोंटे को भेजा था जो पत्थर का एक उम्दा कारीगर था।

अच्युतराय के शासनकाल के दौरान जब नूनिज़ विजयनगर में था, वह राजा के महल, उसकी 500 पत्नियों, पाँच से छः सौ महिलाओं तथा किन्नरों का उल्लेख करता है जिन्हें महल में सेवकों के रूप में नियुक्त किया गया था, और किस प्रकार अधिकारियों द्वारा इसकी व्यवस्था की जाती थी। उसने भी नौ दिवसीय उत्सव का उल्लेख किया है। यद्यपि उसका विवरण इतना विस्तृत नहीं है, तथापि यह ऐसी कुछ जानकारियाँ उपलब्ध कराता है जिनका उल्लेख पायस के विवरण में नहीं मिलता है, जैसे इस उत्सव के दौरान विभिन्न *नायकों* तथा अधिकारियों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं के विषय में। वह इसे मनाने के पीछे कारण भी बताता हैः

> वे इसका आयोजन उन नौ महीनों के सम्मान में करते हैं जिनमें माताएँ अपने पुत्रों को गर्भ में धारण करती हैं। वहीं दूसरे कहते हैं कि इसका आयोजन मात्र इसलिए होता है ताकि *नायक* (कैप्टन) राजा के सम्मुख आकर इस समय अपनी भेंट प्रस्तुत कर सकें।
>
> **सीवेल 1991ः 376**

पायस के विवरण की तुलना में इसमें राजनीतिक-प्रशासनिक संस्कृति की विस्तार से चर्चा की गई है (सीवेल 1991ः 384-90)। इसके अतिरिक्त 'हिंदुओं' ('heathens') के विश्वासों की चर्चा करते हुए वह 'महिलाओं द्वारा स्वयं को अपने मृत पतियों के साथ जला देने की प्रथा का भी वर्णन करता है' और कैसे इसे सम्मान-पूर्ण ढंग से देखा जाता था। इस समय दंड और न्याय की व्यवस्था किस प्रकार की थी वह इसका भी उल्लेख करता है, जैसे चोरी के अपराध के लिए हाथ या पाँव काटकर दंड दिया जाता था, या किसी सम्मानीय स्त्री का शीलभंग करने पर फांसी का दंड दिया जाता था। कुलीनों या अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले द्रोह का दंड 'उन्हें लकड़ी की सूली पर पेट के बल लटका कर' दिया जाता था (सीवेल 1991ः 383)। हिंदुओं के धार्मिक विश्वासों की चर्चा करते हुए वह उनके द्वारा ब्राह्मणों और गायों को दिए जाने वाले सम्मान का उल्लेख करता है और उनका 'तीन पवित्र आत्माओं और केवल एक ईश्वर' पर विश्वास का उल्लेख करता है, स्पष्ट है वह इस संबंध में भ्रम में था।

[1]दूरी नापने की इकाई; 1 लीग (league) = 3 मील (miles)

बोध प्रश्न-2

1) डोमिंगो पायस द्वारा दिए गए विजयनगर के विवरण की चर्चा कीजिए।

....

....

....

2) नूनिज़ द्वारा उपलब्ध कराए गए ऐतिहासिक विवरण की जानकारियों का क्या महत्व है?

....

....

....

3) नूनिज़ और पायस के वृत्तांतों से हम राजसत्ता के विषय में क्या जान सकते हैं?

....

....

....

4) पुर्तगाली यात्रियों के विवरणों में झलकने वाली विजयनगर की आर्थिक स्थितियों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

....

....

....

16.4 सर टॉमस रो

रो जहाँगीर के दरबार में आने वाला सर्वाधिक विख्यात अंग्रेज़ था, जो 1615 सी ई में सूरत के पत्तन पर इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम का मुग़ल बादशाह जहाँगीर के नाम ख़त लेकर आया था, जिसमें एक व्यापारिक समझौते की उम्मीद थी, चूँकि वह साथ ही में ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए भी कार्य कर रहा था। रो जनवरी 1616 में अजमेर में शाही दरबार में उपस्थित हुआ तथा अगस्त 1618 तक वहाँ रहा और फ़रवरी 1619 में उसने इंग्लैंड वापसी की यात्रा शुरू की।

इस राजदूत ने मुग़ल दरबार में चार वर्ष व्यापार-संबंधी समझौता करने के प्रयास में बिताए। इस दौरान न केवल उसने एक विस्तृत ब्योरा दर्ज किया, बल्कि अपने निजी और व्यवसायिक संपर्कों, तथा साथ ही जेम्स प्रथम को भी पत्र लिखे। भारत में उसकी मौजूदगी और बादशाह के साथ उसके संबंधों के विवरण बाद में हैक्लुयट (Hakluyt) सोसाइटी द्वारा प्रकाशित किए गए थे।

टॉमस रो द्वारा स्वदेश भेजे गए पत्राचार दो तरह के पाठकों को संबोधित थे, इनमें से एक पाठक वर्ग ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी थे और दूसरे पाठक चुनिंदा आधिकारिक और शाही वर्ग से संबंधित थे। 17वीं शताब्दी के मुग़ल दरबार और इसके दस्तूर तथा राजनीतिक संस्कृति का उसका विस्तृत विवरण कुलीन तथा शाही पाठक-वर्ग को संबोधित था। बैनर्जी (2017: 161) यह तर्क देती हैं कि, ‘रो मुग़ल भारत को कुछ ऐसे गुणों के साथ परिभाषित करना चाहता था जो उस समय के जैकोबियन इंग्लैंड, और कहें तो यूरोप, के बिल्कुल विपरीत थे।’ उसके द्वारा समरूपता के चिह्न को अनदेखा करना उसके द्वारा ‘स्वयं’ में अवांछित तत्वों को प्राच्य के ‘अन्य’ (oriental ‘other’) में आरोपित करने का संकेत करता है। चिदा-रज़वी (2014: 266, 268) यह संकेत करती हैं कि रो की दोहरी भूमिका में अंतर्निहित विरोधाभास ने उसे मुग़ल दरबार में स्वयं की शक्तिशाली स्थिति होने की छवि पेश करने को मजबूर किया। मुग़ल व्यापार और कूटनीति के लिए इंग्लैंड की एक मामूली से देश की हैसियत यहाँ पहुँचने पर रो के सम्मुख स्पष्ट हो चुकी थी, इसने भी उसके स्वयं के तथा मुग़लों के वर्णन को प्रभावित किया।

शाही दरबार में प्रथम उपस्थिति का ब्योरा देते हुए वह दरबारी रीतियों तथा पदानुक्रम की व्यवस्था और बादशाह के रोज़ाना के नित्यक्रम का संक्षिप्त विवरण देता है। इस विवरण में यह देखा जा सकता

है कि किस प्रकार वह बादशाह और उसके दरबारियों की एक नाटकीय छवि पेश करता है। जहाँगीर के दरबार या राज-सभा की यह छवि न केवल हमें यह बताती है कि दरबार किस प्रकार आयोजित होता था बल्कि यह बोध भी कराती है कि रो किस तरह यह दिखाना चाहता था कि यह सारी शक्ति और भव्यता वास्तविक नहीं थी:

> राज्य, सरकार, युद्ध और शांति के निपटारे के संबंध में कोई भी कार्य वहाँ नहीं किया गया, किंतु पूर्व में बताए गए दो स्थानों में से एक में वह सार्वजनिक रूप से इसकी घोषणा और इसका समाधान करता था और इसे दर्ज किया जाता था, जिसे अगर जिज्ञासा हो तो मात्र दो शिलिंग (shillings) देकर वह इसे देख सकता था, किंतु आम लोग भी उतना ही जानते थे जितना कि राजसभा के सदस्य और हमेशा किसी दुष्ट व्यक्ति द्वारा बादशाह के नए संकल्पों को तोड़ने और उनका तिरस्कार करने की ख़बरें यहाँ पहुँचती थीं। यह दिनचर्या अपरिवर्तनीय थी, केवल बीमारी और नशे की स्थिति ही इसमें बाधा पैदा करती थी, जिसके बारे में अवश्य ही पहले से पता होना चाहिए क्योंकि उसकी समस्त प्रजा गुलामों की तरह है, इस प्रकार वह भी बदले में एक तरह के बंधन से बंधा है, क्योंकि वह इन प्रथाओं और रीतियों का उपयुक्त तरीके से पालन करने के लिए बाध्य है कि किसी दिन यदि वह नज़र ना आए और इसका कोई पर्याप्त कारण न बताया जाए तो लोग विद्रोह कर बैठेंगे; दो दिन तक तो किसी भी कारण से इस दिनचर्या को बाधित नहीं किया जाता, बल्कि उसे अपने दरवाज़ों को खोलने और कुछ लोगों को नज़र आने हेतु सहमति देनी होती थी ताकि सबके मन में संतोष बना रहे।
>
> **रो 1899: 106**

टॉमस रो ने विस्तार से मुग़ल दरबार तथा जहाँगीर की दिलचस्पियों का वर्णन किया है। जहाँगीर के लघु छविचित्र से बंधी हुई एक चार इंच की स्वर्ण ज़ंजीर महत्वपूर्ण अमीरों/कुलीनों को उपहार में दी जाती थी, अमीर वर्ग इस ज़ंजीर को अपनी पगड़ी में बाँधे रखते थे, रो को भी बादशाह का यह लघु-छवि चित्र प्रदान किया गया था। उसने बादशाह के धार्मिक विश्वासों के विषय में भी लिखा है। टॉमस रो के विवरण का उल्लेख इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह बादशाह के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण पर प्रकाश डालता है। इसके अनुसार बादशाह सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु था किंतु वह धर्म परिवर्तन को पसंद नहीं करता था (रो 1899: 314)। वह दानियाल के पुत्रों के ईसाई धर्म में धर्मांतरण का भी उल्लेख करता है किंतु इसका जो वह कारण बताता है, वह जहाँगीर द्वारा पुर्तगाली पत्नी की इच्छा रखना था। सर टॉमस रो ने यह लिखा है कि एक बार जहाँगीर जयपुर के निकट टोडा नामक स्थान पर एक भिक्षु से मिला। जहाँगीर ने उस भिक्षु से बड़े ही प्रेम-भाव, दया और विनम्रता के साथ बात की, जैसा किसी राजा में आसानी से दिखाई नहीं पड़ता, उसने उसे अपनी बाहों में भर लिया, जबकि कोई भी साफ़-सुथरा व्यक्ति उसे छूने का भी साहस नहीं करता और तीन बार उसके हाथ को लेकर अपनी छाती पर रखा और उसे अपना पिता कहकर पुकारा (रो 1899: 366)। इस विवरण में हम न केवल जहाँगीर की ग़ैर-इस्लामी विश्वासों के प्रति स्वीकार्यता देखते हैं, बल्कि उनके प्रति श्रद्धा भी देखते हैं, जो रो के लिए काफ़ी विचित्र सी बात थी।

पादशाह द्वारा शिकार के भोज को बाँटना उसकी अनुकंपा का प्रतीक था। जहाँगीर ने इस प्रकार का अनुग्रह रो पर कई बार दिखाया था। इसके अतिरिक्त रो ने बादशाह के *झरोखा दर्शन* का भी बड़ा ही दिलचस्प वर्णन प्रस्तुत किया है। उसके वर्णन से यह पता चलता है कि शाही महिलाएँ भी *पादशाह* के साथ दर्शन के समय उपस्थित रहती थीं, वह पीछे एक 'जालीदार खिड़की' में बैठी रहती थीं (रो 1899: 320)। रो बादशाह के साथ उसके जन्मदिन के उत्सव पर, दो मौकों पर आगरा और माँडू में, मौजूद रहा था और उसने बादशाह के सामने स्वर्ण जड़ित आसन से युक्त तथा हीरों व सोने की ज़री के काम वाले लहराते झंडों के साथ बारह हाथियों को गुज़रते देखा, हाथियों ने बादशाह को 'मनोहारी ढंग से झुक कर सलाम किया'। इसके बाद *तुलादान* का समारोह आयोजित हुआ, बादशाह को सोने, चाँदी, हीरे, रत्नों, रेशम तथा ज़री के कपड़ों और मसालों, आदि से तोला गया।

रो कहता है कि 'यद्यपि शराब का नशा एक आम और गौरव-पूर्ण बुराई है और राजाओं की आदत है, तब भी यह इतनी कठोरता से प्रतिबंधित था कि कोई भी व्यक्ति *गुज़ेलकान (गुसलख़ाना)* में, जहाँ बादशाह बैठता था, शराब पीकर दाखिल नहीं हो सकता था'। अगर कोई व्यक्ति ऐसा करने का प्रयास करता तो उसे कोड़ों के साथ पीटा जाता। कोड़ा 'एक भयंकर हथियार था जिसमें चार मुँह वाली गाँठ होती थी और प्रत्येक वार पर चार घाव हो जाते थे'। इस वर्णन में रो जहाँगीर के चरित्र में विद्यमान विसंगतियों की चर्चा करता है।

रो ने युद्ध में जाने से पूर्व बादशाह द्वारा शस्त्र धारण करने के समारोह का उल्लेख किया है और शिविर में *पादशाह* के पहुँचने का भी ज़िक्र किया है। सैन्य शिविर (*लश्कर*) क्षेत्र का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि, 'वहाँ हर प्रकार की दुकानें थीं, इस प्रकार व्यवस्थित कि उन्हें "विशेष रूप से पहचाना" जा सकता था कि कहाँ से क्या खरीदना है और संभवतः यह आकार में यूरोप के किसी बड़े से बड़े नगर के समान होता था' (रो 1899ः 363)।

उसने खुसरो के प्रसंग, उसकी लोकप्रियता तथा उसके पिता का उसके प्रति प्रेम का वर्णन भी किया है। वह लिखता है कि खुर्रम, नूरजहाँ, आसफ ख़ान तथा एत्माद-उद-दौला अपनी मर्ज़ी से चला करते थे, खुर्रम हर चीज़ पर नियंत्रण पाता जा रहा था, उन्होंने साथ में मिलकर खुसरो के ख़िलाफ़ षड्यंत्र किया। वह लिखता है यह 'बेचारा शाहज़ादा शेर के पंजों के बीच फँस चुका था, उसने खाना और पीना छोड़ दिया और चाहता था कि उसके पिता उसकी हत्या कर दें ताकि वह अपने शत्रुओं के विजय तथा आनंद का कारण न बने' (रो 1899ः 294)। समस्त दरबार में कानाफूसी, अफ़वाह फैलने लगी और परिस्थिति काफ़ी मुश्किल बन गई। उसे दरबार में नूरजहाँ के समूह द्वारा प्राप्त शक्ति का भी अहसास था। उसने जहाँगीर पर नूर महल के प्रभाव की आलोचना करते हुए लिखा हैः 'एक औरत न केवल हमेशा एक परेशानी होती है बल्कि आमतौर पर वह सबसे बड़ा नशा और सबसे अधिक दुष्ट होती है और वह दर्शाती है कि वह सामान्य तौर पर काम करने के योग्य नहीं है और न ही वह स्वयं किसी प्रकार की योग्यता या सूक्ष्म दृष्टि से सम्पन्न होती है' (रो 1899ः 364)।

बोध प्रश्न-3

1) रो द्वारा वर्णित जहाँगीर के दरबार के वर्णन की विशेषताएँ क्या हैं?

....

....

....

2) रो ने जहाँगीर के धार्मिक व्यवहार को किस प्रकार देखा था?

....

....

....

16.5 फ्रांसिस्को पेल्सार्ट

पेल्सार्ट एक डच फ़ैक्टर (Factor; *गुमाश्ता*) था जो जहाँगीर के काल में आगरा में रहा था। उसने भारतीय उपमहाद्वीप में कई स्थानों की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का बहुत ही रोचक विवरण दिया है। उसका विवरण एक प्रकार की रिपोर्ट है, जो उसके द्वारा किए गए अनुभवों और अन्वेषणों पर आधारित है। उसने इसे डच कंपनी के निदेशकों के पास भेजा ताकि यह उन्हें दक्षिण एशिया और यूरोप के बीच व्यापार से डचों के लाभान्वित होने की संभावना जानने में मदद कर सके। उसकी रिपोर्ट में आगरा शहर, आगरा और देश के पूर्वी हिस्से की व्यापारिक गतिविधियों, उत्तर भारत में डच व्यापार, बुरहानपुर और गुजरात की व्यावसायिक स्थिति, मुग़ल प्रशासन, समाज के निचले वर्गों के साथ ही अभिजात्य वर्ग के जीवन की परिस्थितियों तथा हिंदुओं की धार्मिक प्रथाओं का विवरण है।

पेल्सार्ट ने मसूलीपट्टनम से भारत में प्रवेश किया और पूरे उपमहाद्वीप के उत्तरी और पश्चिमी भागों में उत्पादन और व्यापार से संबंधित अधिकांश महत्वपूर्ण स्थानों का भ्रमण किया। गुजरात के बारे में लिखते हुए, उसने उत्पादन के कई केंद्रों, वहाँ उत्पादित कपड़े की कई किस्मों, पटना और बंगाल या मालाबार जैसे दूरदराज़ के स्थानों से कच्चे माल के आयात और गुजरात के दक्षिण-पश्चिम में स्थित कस्बों के बारे में लिखा है।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण केंद्रों का भी पेल्सार्ट द्वारा उल्लेख किया गया है, जैसे लाहौर का उल्लेख मध्य एशियाई व्यापार और उससे आगे के व्यापक क्षेत्र के लिए अतीत काल से ही प्रमुख व्यापारिक केंद्र के रूप में किया है। मुल्तान और थट्टा वस्त्र, शक्कर, नील तथा गंधक के उद्योगों के लिए प्रसिद्ध थे। उसने कश्मीर की भी यात्रा की तथा वहाँ के लोगों, महत्वपूर्ण उत्पादों, घरों तथा लोगों की दयनीय

स्थिति का विवरण दिया है, उसने वहाँ उत्पादित होने वाले केसर व विभिन्न प्रकार के फलों के विषय में भी लिखा है।

पेल्सार्ट ने आगरा का बहुत ही रोचक वर्णन किया है। उसने शहर की संरचना, अमीरों और गरीबों के घर, उनके खान-पान, विभिन्न वस्तुओं के बाज़ार और वहाँ उपलब्ध विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बारे में लिखा है। उसने आगरा को उत्पादन के महत्वपूर्ण केंद्रों से जोड़ने वाले सभी मार्गों का उल्लेख किया है। उसने वहाँ के प्रसिद्ध भवनों की संरचनाओं का भी उल्लेख किया है, जैसे *मदारी दरवाज़ा, चहारसू दरवाज़ा, नीम दरवाज़ा, नूरी दरवाज़ा* (उनके अनुसार इन सभी द्वारों का निर्माण अकबर द्वारा किया गया था), शाहबुर्ज (शाही दुर्ग, 'जो अपनी भव्यता के साथ-साथ लागत में भी दुनिया की सबसे प्रसिद्ध इमारतों को भी मात देता था'), *गुसलख़ाना,* नूरजहाँ बेगम का महल, चार बाग़ और मोती महल नामक दो उद्यान तथा और भी कई संरचनाओं की चर्चा पेल्सार्ट ने की है। 'किले के भीतर खाली स्थान बहुत ही कम हैं या हैं ही नहीं, यह विभिन्न उभरी हुई इमारतों और आवासों के साथ-साथ महलों, या महिलाओं के लिए आवासों से पूरी तरह घिरा हुआ है। इनमें अकबर की पत्नी और जहाँगीर की माँ मरियम मकानी का महल भी है, साथ ही तीन अन्य महल भी हैं ...' (पेल्सार्ट 1925: 3)। उसके विवरण में उल्लिखित पूर्वी (*पूरोप*) व्यापार केंद्र हैं: जौनपुर (बड़ी मात्रा में कपास के सामान का उत्पादन और निर्यात), बनारस (हिंदू महिलाओं के लिए कमरबंद, पगड़ी, कपड़े, ताँबे के बर्तन, बेसिन (basins) और हिंदू घरों में उपयोग के लिए अन्य वस्तुएँ भी उत्पादित करता है), अवध (मोटे कपड़े का उत्पादन), लखावर (बेहतर सफ़ेद कपड़ा), पटना (रेशम, मलमल), बंगाल में चबासपुर और सोनारगाँव (उच्च गुणवत्ता वाले मलमल का उत्पादन करता है) (पेल्सार्ट 1925: 7-8)।

पेल्सार्ट ने आगरा में मसालों के व्यापार के बारे में जो लिखा है, उससे पता चलता है कि उसकी दृष्टि कितनी तीक्ष्ण थी तथा समझ कितनी स्पष्ट थी। भारतीय व्यापारियों द्वारा मसालों के व्यापार में डच व्यापारियों के साथ प्रतिस्पर्धा हेतु प्रयुक्त होने वाली विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है। वह हमें बताता है कि आगरा के बाज़ार में किन मसालों को व्यापार हेतु लाया जाता था। इसके बाद वह डच कम्पनी को सुझाव देता है कि किस प्रकार व्यापार को संगठित किया जाए जिससे अधिकतम लाभ हो तथा इस लाभ को नील और भारतीय वस्त्रों के व्यवसाय में लगाया जाए।

नील के उत्पादन, और विशेष रूप से बयाना में नील के उत्पादन, के बारे में उसने जो लिखा है, इस संदर्भ में पेल्सार्ट का कोई सानी नहीं है। बयाना में प्रयुक्त नील की उत्पादन-विधियों के बारे में उपलब्ध जानकारी का उपयोग मध्यकालीन भारतीय और ब्रिटिश तकनीकों की तुलना करने के लिए किया जा सकता है। उनका वर्णन है कि आम तौर पर फसल जून में बोई जाती है, बारिश के मौसम से पहले, और सर्दी के मौसम से पहले फसल काट ली जाती है ताकि यह अपना रंग न खोए। वह लिखता है:

> ...प्रत्येक *हौज़* (*put*) में लगभग एक बीघा की उपज डाली जाती है, और 16 से 17 घंटे के लिए उसे भीगने के लिए छोड़ दिया जाता है, यह *पुत* लगभग 38 फ़ीट गहरा होता है। अपने परिमाप और इसकी गहराई में यह एक सामान्य व्यक्ति की ऊँचाई का होता है; फिर पानी को एक गोल *पुत* में निकाल दिया जाता है, जो कुछ निचले स्तर पर बना होता है, जिसकी परिधि 32 फ़ीट और गहरायी छः फ़ीट होती है, *पुत* में खड़े हुए दो या तीन व्यक्ति नील को हाथों से आगे-पीछे करते हैं, और इस लगातार चलाने से नीला रंग पानी में अवशोषित हो जाता है। इसे फिर से 16 घंटों के लिए छोड़ दिया जाता है, इस दौरान इसका माल या निचोड़ *पुत* की तली में स्थित एक कटोरे के आकार के एकत्रण पात्र में बैठ जाता है, तब निकास द्वारा पानी को बहा दिया जाता है ... नील जो नीचे बैठ गया है ... उसे सूती वस्त्रों में छोड़ दिया जाता है जब तक कि यह साबुन की तरह दृढ़ न हो जाए, तब इसकी गोलियाँ बना ली जाती हैं।
>
> **पेल्सार्ट 1925: 11**

सामाजिक परिस्थितियों की चर्चा करते हुए, वह समाज के निचले तबके की खराब स्थितियों पर ध्यान केंद्रित करता है। उसके अनुसार कर्मकार (दस्तकार), नौकरों और दुकानदारों के तीन वर्गों की स्थिति स्वैच्छिक दासता की स्थिति से बहुत भिन्न नहीं है। कामगारों की दो समस्याएँ होती हैं, एक, कम मजदूरी, और दूसरी है 'गवर्नर, कुलीनों, *कोतवाल, बख़्शी* और अन्य शाही अधिकारियों द्वारा उत्पीड़न'। इन कुलीनों के लिए उन्हें या तो बिना किसी पारिश्रमिक के या बहुत कम भुगतान के लिए काम करना पड़ता है। इसी तरह, नौकरों, 'जिनकी संख्या इस देश में बहुत अधिक होती है', उनके

कर्तव्यों को घर और बाहर, दोनों, में अच्छी तरह से परिभाषित किया गया है, उन्हें भी अच्छी तरह से भुगतान नहीं किया जाता है, और 'उनकी मजदूरी अक्सर कई महीनों से बकाया रहती है, और फिर फटे-पुराने कपड़े या अन्य चीज़ें देकर भुगतान किया जाता है'। हालांकि, 'दुकानदारों को दस्तकारों की तुलना में अधिक सम्मान दिया जाता है और उनमें से कुछ तो संपन्न भी होते हैं'। लेकिन, वे भी कुलीन वर्ग की सनक और मनमाने व्यवहार के शिकार हैं (पेल्सार्ट 1925: 64)।

बोध प्रश्न-4

1) पेल्सार्ट ने आगरा शहर का वर्णन किस प्रकार किया है?

....

....

....

2) उस समय की सामाजिक परिस्थितियों के बारे में हम पेल्सार्ट के वृत्तांत से क्या जान सकते हैं?

....

....

....

16.6 जीन बैप्टिस्ट टैवर्नियर

जीन बैप्टिस्ट टैवर्नियर सत्रहवीं शताब्दी का सबसे प्रसिद्ध फ्रांसीसी यात्री था। वह पेशे से जौहरी था और शाहजहाँ के शासनकाल में भारत आया था। वह एक अनुभवी और साहसी यात्री था और यात्रा के ख़तरों से नहीं डरता था। उसने पूर्व की सात यात्राएँ की थीं, जिनमें से छः बार वह भारत आया था। ये यात्राएँ 1641-1642; 1645-1647; 1651-1654; 1657-1661; तथा 1665-67 के दौरान की गई थीं। अपनी पहली दो यात्राओं के दौरान टैवर्नियर ने लगभग पूरे भारत को खंगाल डाला था। अपनी पहली यात्रा के दौरान उसने सूरत, बुरहानपुर, आगरा, ढाका, गोवा और गोलकुंडा की यात्रा की। गोलकुंडा में उसने हीरे की खदानों के बारे में पूछताछ की और संभवतः खदानों को देखा भी था।

अपनी दूसरी यात्रा के दौरान वह दौलताबाद-नांदेड़ मार्ग से गोलकुंडा पहुँचा और वहाँ की हीरे की खानों के अलावा उसने दखलाकोंडा (आधुनिक रामलकोट) और गनी या कोल्लूर की खानों का भी दौरा किया। अपनी तीसरी यात्रा के दौरान उसने पूर्वी तट पर मसूलीपट्टनम, मद्रास, गंडीकोट, आदि स्थानों का दौरा किया और वहाँ से वह अपने जवाहरात बेचने के लिए गोलकुंडा की ओर निकल गया। उच्च मूल्य के कारण यह सौदा नहीं हो सका और वह जल्द ही यहाँ से सूरत के लिए रवाना हो गया। सूरत में उसे गुजरात के सूबेदार शाइस्ता ख़ान से अहमदाबाद आने का निमंत्रण मिला। यहाँ से वह फिर से औरंगाबाद मार्ग से गोलकुंडा और आसपास के स्थानों की हीरे की खदानों में व्यापार करने के उद्देश्य से गया और उसी वर्ष सूरत लौट आया।

1657 में वह फिर से भारत आया और इस यात्रा का उद्देश्य शाइस्ता ख़ान द्वारा मँगाए गए सामानों की आपूर्ति करना था, उसके पास कुछ दुर्लभ वस्तुएँ थीं जिन्हें उसने शाइस्ता ख़ान को बेचा। उस समय शाइस्ता ख़ान दक्खन की घेराबंदी कर रहा था। अपना काम पूरा करने के बाद टैवर्नियर ने फिर से गोलकुंडा की ओर रुख किया, और यहाँ से 1660 या 1661 की शुरुआत में फिर से सूरत चला गया। इस समय तक टैवर्नियर ने पर्याप्त समृद्धि हासिल कर ली थी। घर लौटने पर, उसे उसकी सेवाओं के लिए लुई XIV द्वारा उच्च कुलीन की उपाधि से सम्मानित किया गया। उसने जिनेवा के पास औबोन की बैरोनी (barony) खरीदी और वहाँ आराम और ऐश्वर्य के साथ रहने लगा। यहीं पर उसने अपना विवरण प्रकाशित करने के विषय में विचार किया। 1675 में उसका विवरण *नोवेल रिलेशन डू सीरसिल्डा ग्रैंड सिग्नेयर* शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ, और *द सिक्स वॉयेजेज़* को अगले वर्ष प्रकाशित किया गया। ये पुस्तकें जल्द ही अंग्रेज़ी, जर्मन और इतालवी (Italian) भाषाओं में प्रकाशित हुईं और लोकप्रिय हो गईं।

अपनी अंतिम यात्रा में उसके पास व्यापार करने के लिए कई क़ीमती सामान थे। बुरहानपुर, सिरोनी, ग्वालियर, आगरा होते हुए वह जहानाबाद पहुँचा और औरंगजेब तथा उसके महत्वपूर्ण अमीरों से

मुलाकात की। वह अपने सबसे क़ीमती रत्नों को *पादशाह* को बेचने में सफल रहा था। दो महीने जहानाबाद में रहने के बाद वह फिर आगरा चला गया और यहाँ से सूरत लौट आया। यह उसकी आख़िरी यात्रा थी। यह तथ्य कि टैवर्नियर बहुत लंबे समय तक भारत में रहा था, भारत के प्रमुख व्यापार केंद्रों के विषय में उसके द्वारा उपलब्ध विवरणों से भी प्रमाणित होता है। इसलिए, उसकी इस यात्रा का सत्रहवीं शताब्दी के मुग़ल इतिहास में बहुत महत्व है। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि उसका उद्देश्य भारत के लोगों और क्षेत्रों का अवलोकन और अध्ययन करना नहीं था। एक व्यापारी की दृष्टि से उसने जो कुछ भी महत्वपूर्ण समझा, उसने केवल उन्हीं चीज़ों पर ध्यान केंद्रित किया है। उसका ध्यान अपनी व्यापारिक सौदेबाज़ियों की सफलताओं का उल्लेख करने पर अधिक है, लेकिन इसी प्रवृत्ति के कारण, वह भारत में व्यापारियों, साहूकारों और *सर्राफ़ों* द्वारा व्यावसायिक गतिविधियों में उपयोग की जाने वाली तरकीबों और तरीकों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देता है। वह *सर्राफ़ों* की बचत की अत्यंत सचेत प्रकृति पर टिप्पणी करते हुए लिखता हैः

> ... शुद्धता की जाँच कर लिए जाने के बाद कसौटी पर जितना भी सोना बचा रहता है, जिसके बारे में यहाँ कोई सोचता भी नहीं है, जिसकी मात्रा इतनी कम होती है कि उसके बर्बाद चले जाने के बारे में चिंता नहीं की जाती है, ये लोग इसे भी एक गेंद की सहायता से इकट्ठा कर लेते हैं, जो आधी काली राल की तथा आधी मोम की बनी होती है, इससे वे उस पत्थर को घिसते हैं जिसमें सोना लगा रहता है, और कुछ सालों के बाद वे इस गेंद को जला देते हैं तथा इस प्रकार एकत्र हुआ सोना प्राप्त कर लेते हैं, यह गेंद हमारे टेनिस कोर्ट में प्रयोग होने वाली गेंद के आकार की होती है, और पत्थर वैसा ही होता है जैसा अक्सर सुनार प्रयोग करते हैं।
>
> **टैवर्नियर, भाग II: 29-30**

सर्राफ़ों के महत्व पर टिप्पणी करते हुए टैवर्नियर लिखता है, 'सभी यहूदी लोग जो ग्रैंड सिन्योर (Grand Seigneur) के साम्राज्य में धन और विनिमय के मामलों में बहुत ही कुशाग्र माने जाते है, लेकिन भारत में, वे शायद इन विनिमयकर्ताओं के सामने नौसिखिए ही प्रतीत होंगे ...' (टैवर्नियर भाग II: 24)। उसने कुछ व्यापारिक वस्तुओं, जैसे मसाले, कस्तूरी, नील, हाथीदाँत, आदि के उत्पादन और बिक्री में उपयोग की जाने वाली विधियों का भी वर्णन किया है, जो भारतीय वाणिज्य प्रथाओं के इतिहास के ज्ञान के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। एक अनुभवी और विशेषज्ञ व्यापारी द्वारा लिखा जाने के कारण इस विवरण का महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है। उसका रत्नों और मोतियों का वर्णन बहुत सटीक और स्पष्ट है।

टैवर्नियर ने लगातार लोगों को बताया कि वह फ्रांस और फ़ारस के सम्राटों के संरक्षण में यात्रा कर रहा था। इससे उसे शाही दरबार के अमीरों/कुलीनों और उच्च अधिकारियों के साथ बैठने और संपर्क करने का अवसर मिला था। उसे राजकोष के जवाहरात, आदि का मूल्यांकन करने के लिए बुलाया गया था। कोहिनूर का दिलचस्प और विशद् विवरण इस कारण से उपलब्ध हुआ कि उसे कोहिनूर को देखने और उसका परीक्षण करने का पूरा अवसर मिला। उसने मुग़ल साम्राज्य के प्रमुख कुलीनों, जैसे शाइस्ता ख़ान, का विवरण दिया है, और यह भी कि उन्होंने कीमती रत्नों की बिक्री के लिए कैसे बातचीत की, जो कि बहुत दिलचस्प है, जिसका उसने उल्लेख भी किया है। उसके द्वारा मीर जुमला के प्रशासनिक कौशल और व्यापार करने के विशिष्ट तरीके का भी उल्लेख किया गया है। उसने *वज़ीर* ज़फ़र ख़ान और उसकी बुद्धिमान पत्नी के बारे में भी दिलचस्प जानकारी दी है।

टैवर्नियर के विवरण से मुग़ल दरबार और सैन्य व्यवस्था के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसका विवरण *क़ाज़ी* के पद और न्याय-प्रशासन, चुँगी भवन (octroi house) और अधिकारियों, आदि के बारे में भी बहुत महत्वपूर्ण है। टैवर्नियर विदेशी शक्तियों और उनके प्रतिनिधि कर्मचारियों के विभिन्न संदर्भ भी प्रदान करता है जो पूर्वी व्यापार में एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते थे।

उसके विवरण में हमें मथुरा के केशवदेव, बनारस के विश्वनाथ, पुरी के जगन्नाथ और तिरुपति मंदिर के भी दिलचस्प विवरण मिलते हैं। उस समय के इन मंदिरों की स्थापत्य शैली को न केवल उसके विवरण से जाना जा सकता है बल्कि वहाँ होने वाले अनुष्ठानों, इन मंदिरों की आय का भी उल्लेख हमें मिलता है। लेकिन वह केवल धार्मिक रीति-रिवाज़ों के बाहरी पक्ष पर ध्यान देता है, 'मूर्तिपूजा', 'बेचारे मूर्तिपूजक', 'शैतानों की पूजा', आदि की अपनी पूर्वकल्पित धारणाओं के दायरे से वह बाहर नहीं निकल सका है (टैवर्नियर भाग II: 225-237)। इसी तरह हिंदू त्योहारों और उत्सव-यात्राओं का

वर्णन भी बहुत दिलचस्प है। उसने सूफ़ी संतों के समूहों और समुदायों और उनके जीवन व अन्य तथ्यों का विवरण भी प्रदान किया है।

अधिकांश यूरोपीय लोगों की तरह, उसने ***सती*** होने की रीतियों का विवरण देने में बहुत रुचि दिखाई है। उसका कहना है कि *सती* करने के लिए *सूबेदार* की अनुमति की आवश्यकता होती है। *सती* संस्कार के तीन तरीके थे जिनको उसने भारत में देखा था – गुजरात राज्य में, और आगरा व दिल्ली तक के क्षेत्र में, बंगाल में, तथा कोरोमंडल के राज्य में। वह इस प्रथा का इस प्रकार वर्णन करता है:

> भारत के मूर्तिपूजकों में एक प्राचीन रिवाज़ यह भी है कि एक आदमी की मृत्यु होने पर उसकी विधवा कभी पुनर्विवाह नहीं कर सकती; इसलिए, जैसे ही उसकी मृत्यु हो जाती है, वह अलग होकर अपने पति के लिए रोना शुरू कर देती है, और कुछ दिनों बाद उसके बाल मुँडवा दिए जाते हैं, और वह अपने उन सभी गहनों को नष्ट कर देती है, जिनसे वह सुशोभित रहती थी, वह अपने हाथों और पैरों से उन कंगनों को उतार देती है जो उसके पति ने उसे दिए थे, जब उसने विवाह में उसे स्वीकार किया था, एक संकेत के रूप में, ये गहने अपने पति के प्रति उसके समर्पण तथा दासता का प्रतीक थे, और वह अपना शेष जीवन बिना किसी उद्देश्य के, उसी स्थान पर, जहाँ वह पहले मालकिन थी, दास से भी बदतर स्थिति में बिताती है। यह दयनीय स्थिति उसे जीवन से घृणा करने को मजबूर बनाती है, और वह अंतिम संस्कार के निमित्त तैयार चिता पर अपने मृत पति के शरीर के साथ जीवित भस्म हो जाने के लिए चढ़ना पसंद करती है, बजाय कि अपने शेष जीवन को पूरी दुनिया के द्वारा दिए गए कलंक और तिरस्कार के साथ जीने के। **टैवर्नियर, भाग II: 209**

टैवर्नियर के विवरण में कुछ त्रुटियाँ हैं, उदाहरण के लिए, वह बहमनी साम्राज्य के विखंडन के परिणामस्वरूप विजयनगर साम्राज्य के उदय होने का वर्णन करता है। इसके अलावा वह कई ऐसी घटनाओं का साक्षी होने का दावा करता है जो वास्तव में उसने नहीं देखी थीं। उसका बीजापुर का विवरण भी संदिग्ध है, वह कभी बीजापुर नहीं गया था।

जिस अवधि के दौरान वह भारत में था, वह डचों के व्यापार में वृद्धि की अवधि थी, टैवर्नियर के विचार में (भाग I: 188), डचों ने अपने दक्ष नेतृत्व में एशियाई सेना को रखने के लाभों को महसूस किया था, उसने अपने विवरण में स्पष्ट रूप से कहा है कि डच दक्षिण भारत में एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर रहे थे। कुल मिलाकर, टैवर्नियर के वृत्तांत मुग़ल साम्राज्य के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए, विशेष रूप से आर्थिक इतिहास के ज्ञान के लिए, बहुत महत्वपूर्ण हैं।

बोध प्रश्न-5

1) मध्यकालीन आर्थिक परिस्थितियों को समझने के लिए टैवर्नियर के विवरण के महत्व का समालोचनात्मक आकलन कीजिए।

....

....

....

2) टैवर्नियर ने भारतीय धार्मिक प्रथाओं को कैसे देखा?

....

....

....

16.7 फ़्रंस्वा बर्नियर

बर्नियर के सुविख्यात अभिकथन थे कि 'एशियाई राज्यों में भूमि में निजी संपत्ति का अभाव था, या वंशानुगत कुलीन वर्ग और व्यक्तिगत रूप से राजा यहाँ अत्याचारी और मनमाने ढंग से शासन करते थे' (तांबिया 1998: 362)। उसके इन दावों को समझने के लिए हमें उस पृष्ठभूमि में जाना होगा जहाँ से बर्नियर भारत आया था, और इसने भारत के बारे में उनकी धारणाओं को कैसे प्रभावित किया था। बर्नियर को अन्य यूरोपियों द्वारा एक बेहतर औपचारिक शिक्षा प्राप्त होने के लिए जाना जाता था: वह जूई (Joue, अंजौ [Anjou] के क्षेत्र में) में पैदा हुआ, उसने 1640 के दशक

में पेरिस में समय बिताया था, कुछ समय के लिए कॉलेज रॉयल में गणित के प्रोफ़ेसर, प्रसिद्ध दार्शनिक पियरे गैसेंडी (Pierre Gassendi) के साथ उसने अध्ययन किया था, जर्मनी और इटली की यात्रा के बाद, बर्नियर 1650 के दशक की शुरुआत में फ़्रांस लौट आया और गैसेंडी का सचिव बना, उसी समय, उसने मोंटपेलियर (Montpellier) से चिकित्सक की उपाधि प्राप्त करने में कामयाबी हासिल की। बर्नियर अपने गुरु के कार्यों को प्रकाशित करने और इसके चिंतन को आगे बढ़ाने के लिए फ़्रांस में रुका होता किंतु इसके बजाय, उसने अभी भी अज्ञात कारणों से, जिनके बारे में उसने वही रूढ़ कारण 'दुनिया को देखने की इच्छा' बताया – एक लंबी यात्रा पर निकलने के लिए फ़्रांस छोड़ा। 1658 में लाल सागर में जेद्दाह और मोका के बंदरगाहों के माध्यम से एक यात्रा उसे 1659 की शुरुआत में सूरत ले आई। उसने अहमदाबाद से शुरू करते हुए और फिर आगरा से कश्मीर और बंगाल तक, दूर-दूर तक, भारत की यात्रा की। कुछ समय के लिए कासिम बाज़ार में रहने के बाद वह मसूलीपट्टनम और गोलकुंडा के लिए रवाना हुआ और यहाँ से वापस सूरत आ गया।

इस बीच वह ईरानी अमीर/कुलीन और बुद्धिजीवी मुल्ला मुहम्मद शफ़ी यज़्दी के रूप में एक शक्तिशाली संरक्षक खोजने में कामयाब रहा, जिसे दानिशमंद ख़ान की उपाधि प्राप्त थी तथा जो अपने जीवन के बाद के वर्षों में वह *मीर बख़्शी* के पद तक पहुँचा था। बर्नियर को उसके चिकित्सा कौशल के लिए मुग़ल दरबार में सामान्यतः प्रशंसा मिली और दानिशमंद ख़ान द्वारा व्यक्तिगत रूप से ग्रीक और लैटिन में शास्त्रीय (classical) परंपरा तथा समकालीन यूरोपीय बौद्धिक विकास के ज्ञान के लिए उसकी विशेष रूप से सराहना की गई थी। बर्नियर, 'एक ओर, स्पष्टतः मुग़लों की इस्लामी दुनिया में उत्तर-गैलीलियन समय का सबसे अच्छा यूरोपीय ज्ञान लाया था, वहीं उसने मुगलों की वास्तविकता को यूरोपीय दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया था।' 1670 और 1671 में प्रकाशित चार रचनाओं ने उसे अपनी पीढ़ी में, यूरोप में भारत के प्रमुख व्याख्याकार के रूप में प्रतिष्ठा दिलाईः पहली, *इस्तोरी डे ला डेनियहे रिवोल्यूशों डे एस्तात डू ग्रैंड मोगोल*, और *एवेमें पार्टिकुलियर्स* और फिर 1671 से दो पत्र-संग्रह, दोनों को *सूट डे मेमोयर्स डु सीउर बर्नियर* का शीर्षक दिया गया था। इनमें से कई का 1670 के दशक के मध्य तक अंग्रेजी, इतालवी, डच और जर्मन में अनुवाद हो गया था, जिससे उसे और भी व्यापक पाठक मिले।

जहाँ बर्नियर ने इन प्रकाशित कृतियों में स्वयं को 'सार्वदेशिक' की छवि में प्रस्तुत किया, वहीं इसके साथ ही, उससे 'एक देशभक्त फ़्रांसीसी के रूप में भारत में राजनीतिक, सांस्कृतिक और वाणिज्यिक परिदृश्य के अपने सम्पन्न ज्ञान को नई गठित कम्पनी रोयाल दे इंडे ओरियंताल (Compagnie royale des Indes Orientales) की सेवा में प्रस्तुत करने की उम्मीद भी की गई थी' (सुब्रह्मण्यम 2017: 3)।

'निरंकुश मुग़ल'

बर्नियर का भारत आगमन ऐसे समय में हुआ जब शाहजहाँ के पुत्रों के बीच उत्तराधिकार का युद्ध चल रहा था। औरंगज़ेब का राज्याभिषेक उसके भारत प्रवास के दौरान हुआ। इस प्रकार बर्नियर को दो प्रभावशाली मुग़ल शासकों के काल की घटनाओं को देखने और समझने का अवसर मिला। शाहजहाँ की मृत्यु जब हुई तब बर्नियर मसूलीपट्टनम में था। उसने इस गृहयुद्ध या 'क्रांति' या उत्तराधिकार के युद्ध, जिसमें देश के सभी प्रमुख अमीरों/कुलीनों ने भाग लिया था, का वर्णन किया है। इसके साथ ही उसने गृहयुद्ध की समाप्ति और भारत से उसके जाने के बीच हुई घटनाओं का वर्णन किया है।

बर्नियर ने उस समय के महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों को विस्तार से चित्रित किया है। दारा के बारे में वह कहता हैः 'दारा में अच्छे गुणों की कमी नहीं थी और वह बहुत उदार था, लेकिन वह अपने बारे में बहुत उच्च राय रखता था। उसे विश्वास था कि वह अपने दिमाग की शक्ति से सब कुछ कर सकता है। वह उन लोगों के लिए बहुत कठोर था जो उसे सलाह देने या स्थिति की वास्तविकता से अवगत कराने की कोशिश करते थे, यही कारण है कि उसके सबसे प्यारे दोस्तों ने भी उसे उसके भाइयों की साज़िशों और चालों के बारे में सचेत नहीं किया।' वह औरंगज़ेब में दारा के समान शालीनता और नेक आचरण के अभाव का वर्णन करता है, लेकिन उसमें निर्णय लेने की अद्भुत क्षमता थी और उसकी दृष्टि अपने सहायकों और शुभचिंतकों के चयन में बहुत दक्ष थी। वह गंभीर, बुद्धिमान और अपने विचारों और योजनाओं को गुप्त रखने में बहुत कुशल था। शाहजहाँ की प्रभावशाली बेटी के बारे में वह लिखता है, 'जहाँआरा बेग़म साहब अपने पिता की बहुत प्यारी संतान थीं'। बर्नियर शाहजहाँ पर जहाँआरा के

असीमित प्रभाव और महत्वपूर्ण मामलों में उसके हस्तक्षेप से अवगत था। इस प्रकार, बर्नियर के विचारों में, सभी राजनीतिक-प्रशासनिक शक्ति शाही परिवार के व्यक्तियों पर निर्भर थी, साथ ही, वह इस देश में प्रचलित अराजकता को भी दर्ज करता है जो शाही अधिकारियों को किसानों पर 'लगभग पूर्ण नियंत्रण का प्रयोग करने की अनुमति देती थी, और लगभग उतना ही कस्बों और गाँवों के कारीगरों और व्यापारियों पर भी ... यहाँ किसी भी प्रकार के बड़े सामंत, संसद, या स्थानीय अदालतों के न्यायाधीश नहीं हैं, जैसे फ़्रांस में होते हैं, जो निर्दयी उत्पीड़कों पर लगाम लगा सकें, और *क़ाज़ी* या न्यायाधीशों को अन्याय के निवारण के लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान नहीं की जाती है ...' (बर्नियर 1914: 224)।

भारत में वाणिज्य की स्थिति

कोलबर्ट को लिखे एक पत्र में बर्नियर ने वाणिज्य की वस्तुओं, जो भारत में विनिर्मित होती हैं और जिनका निर्यात होता है, इसके आयातों, और इसकी ओर होने वाले सोने और चाँदी के प्रवाह का वर्णन किया है। बंगाल न केवल खाद्य पदार्थों के उत्पादन के लिए, बल्कि रेशम, कपास और नील जैसी वाणिज्यिक वस्तुओं के लिए भी जाना जाता है, जो यहाँ उत्पादित होती थीं। देश के अन्य हिस्से भी न केवल रेशम और सूती सामान, बल्कि कालीन, ज़री, कढ़ाई, सोने और चाँदी के वस्त्र बनाने के लिए भी प्रसिद्ध हैं। उसके अनुसार, 'बाहरी देशों से विभिन्न प्रकार के सामान भारत में लाए जाते हैं, लेकिन इन वस्तुओं के आयात के बदले में सोने या चाँदी के निर्यात की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि बाहरी व्यापारियों के लिए बदले में यहाँ के श्रेष्ठ उत्पादों को ले जाना अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक होता है' (बर्नियर 1914: 204)। इस प्रकार, विदेशी वस्तुओं और उत्पादों की भारत में आपूर्ति के बाद भी दुनिया के सोने और चाँदी का एक बड़ा हिस्सा 'भारत में अवशोषित होता है, जिसके आने के साधन तो कई हैं, जबकि शायद ही कोई बाहर जाने का रास्ता हो' (बर्नियर 1914: 204)।

निजी संपत्ति का अभाव

'हिन्दुस्तान में *पादशाह* समस्त भूमि का मालिक है', बर्नियर के इस आकलन ने यूरोपीय बुद्धिजीवियों के मन में यह धारणा पैदा कर दी कि भारत में कोई निजी संपत्ति के अधिकार नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि बर्नियर का उपरोक्त कथन सत्य से बहुत दूर है। बर्नियर की यह गलत धारणा बनी क्योंकि वह भारत में *जागीर*-व्यवस्था की कार्यप्रणाली को नहीं समझ सका था। हबीब (1963: अध्याय 5) ने दर्शाया है कि मुग़ल भारत में कोई ऐसा एकल 'निजी संपत्ति' का अधिकार नहीं था, जिसका दावा शासक या स्वतंत्र मध्यम वर्ग कर सकें। भूमि, उसकी काश्त, उसके उत्पाद के विभिन्न अंशों पर कई प्रकार के अधिकार थे, जो 'व्यक्तिगत स्तर पर बेचे भी जा सकते थे'। बर्नियर ने ज़ब्त (escheat) के नियम का भी उल्लेख किया है, *पादशाह* के सापेक्ष अमीरों की अस्थिर स्थिति को दर्शाने के लिए। 'राजा के साम्राज्य की समस्त भूमि के स्वामी होने से यहाँ न तो ड्यूक और न ही मार्क्विस जैसे संपत्तिधारी लॉर्ड हैं, और न ही कोई परिवार अपने क्षेत्र से अर्जित सम्पत्ति को धारण कर सकता है और अपनी इस विरासत से प्राप्त सम्पत्ति पर जीवन यापन कर सकता है' (बर्नियर 1914: 211)। मुग़ल सम्राट, 'अपने अमीरों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होने के नाते, व्यवस्थित रूप से उनके बेटों और पोतों को बेदखल कर देता है, और उन्हें इस तरह से भिखारी या सामान्य सैनिक मात्र की स्थिति में पहुँचा दिया जाता है।' वास्तव में, यह नियम उन मामलों में लागू किया जाता था जहाँ अमीर/कुलीन को राज्य का बकाया ऋण (*मुतालिबा*) देना शेष हो। आमतौर पर मृत अमीर विशेष की संपत्ति से राज्य द्वारा *मुतालिबा* वसूल करने के पश्चात् शेष संपत्ति उसके परिवारजनों को राज्य द्वारा वापस लौटा दी जाती थी।

बर्नियर ने कृषकों और भूमि-स्वामित्व के बारे में महत्वपूर्ण विवरण उपलब्ध कराए हैं, जो उस अवधि में कृषि की स्थिति का यथेष्ट प्रतिबिंब देते हैं। उसके अनुसार मजदूरों और काश्तकारों की कमी के कारण भूमि का एक बड़ा हिस्सा बेकार रहता है, क्योंकि उनमें से ज्यादातर *सूबेदार*, आदि के व्यवहार के परिणामस्वरूप मर जाते हैं। ऐसा भी होता है कि अधिकांश किसान उत्पीड़न से हताश होकर अपनी भूमि छोड़ देते हैं और शहरों या छावनियों में जीवन निर्वाह के कुछ अन्य सरल साधन खोजने के लिए चले जाते हैं। कभी-कभी वे राजाओं के क्षेत्र में शरण लेते हैं क्योंकि यहाँ उनके कम उत्पीड़ित होने और कुछ राहत मिलने की संभावना होती है (बर्नियर 1914: 367)। इस जानकारी का उपयोग करते हुए जहाँ इरफ़ान हबीब किसानों से मुग़ल राज्य के निरंतर प्रतिरोध को दर्शाते हैं, ताम्बिया का तर्क है कि यह स्वयं एक शक्तिशाली निरंकुश मुग़ल राज्य की छवि के विपरीत है।

बोध प्रश्न-6

1) निरंकुश मुग़ल राजसत्ता से बर्नियर का क्या अभिप्राय है?

....

....

....

2) भारत में निजी सम्पत्ति के संबंध में बर्नियर के विचार का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

....

....

....

16.8 निकोलो मनुची

निकोलो मनुची का जन्म वेनिस, इटली में हुआ था। बहुत कम उम्र में ही, 1653 और 1655 के बीच, मनुची बंदर अब्बास से सूरत के मुग़ल पत्तन के लिए एक जहाज़ पर सवार हुआ था, और लगभग 1656 के बाद, मुग़ल राजकुमार दारा शिकोह के तोपख़ाने में कार्यरत था। जेसुइट (Jesuit) पादरियों से उसने फ़ारसी भाषा सीखी और इसके बाद स्वयं को चिकित्सा के प्रति समर्पित कर दिया। उसने मुग़ल सम्राट के दरबार में एक चिकित्सक के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कीं और 'यहाँ के अदब, रीति-रिवाज़ों, प्रशासन, धर्म और एक महान् साम्राज्य के संचालन से जुड़ी हर चीज़ का अवलोकन किया।' दारा के कारावास और फांसी के बाद उसने पटना और बंगाल के लिए प्रस्थान किया; और बाद में आगरा और दिल्ली लौट आया, और मिर्ज़ा राजा जय सिंह की सेवा में कार्यरत हुआ। इसके बाद, वह मुग़ल सेवा से निवृत्त होकर पुर्तगालियों की सेवा में शामिल हो गया, मुग़ल सेवा में उसका यह आना-जाना लगातार बना रहा, और अपने अंतिम वर्षों के दौरान वह कुछ समय मद्रास में रहने और ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए काम करने के बाद पांडिचेरी में था। इसी दौरान उसने अपने संस्मरण लिखने शुरू किए और उन्हें 1700 में पेरिस भेजा, जहाँ वे जेसुइटों (Jesuits) के हाथों में पहुँच गए, जिनका एक विकृत संस्करण 1705 में फ्रेंसोहा कत्रो (Francois Catrou) की कलम से *इस्तोर जेनरल डे ल'एम्पायर डू मोगल डेपुइस सा फोंडेशन, सुर लेस मेमोयर्स पोर्टुगैस डी एम. मनौची* (पेरिस, 1705) के रूप में प्रकाशित हुआ।

मुग़ल भारत पर शोध में संलग्न इतिहासकारों ने मनुची की कृतियों का विभिन्न तरीकों से व्यापक उपयोग किया है। 'ऐसा करने में ये उसके *स्टोरिया डेल मोगोल* के मूल पाठ का उल्लेख नहीं करते हैं, जिसके प्रकाशन का एक अत्यंत जटिल इतिहास रहा है, बल्कि 1907 में भारतीय सिविल सेवा के विलियम इरविन द्वारा प्रकाशित बहुत ही उपयोगी चार-खंडों के अंग्रेज़ी अनुवाद का प्रयोग करते हैं – जो मिश्रित शीर्षक, आधे इतालवी और आधे पुर्तगाली, *स्टोरिया डो मोगोर* के नाम से प्रकाशित हुआ था' (सुब्रह्मण्यम 2008: 40)।

उसकी रचनाओं में हमें तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का जीवंत वर्णन मिलता है। मनुची ने दारा के साथ विश्वासघात और उसकी मृत्यु की परिस्थितियों का वर्णन किया है, और औरंगज़ेब की सुकृत नियति, गोवा के निकट के अभियान, और गोलकुंडा पर मुग़ल हमलों और विजय पर विस्तार से चर्चा की गई है। उसने 1700 और 1707 के बीच औरंगज़ेब की गतिविधियों के विस्तृत विवरण दिए हैं, जिसमें इस प्रदेश की उजाड़ स्थिति, 1702 से 1704 के बीच पड़ा लंबा सूखा (drought), और मसूलीपट्टनम में मराठों की घुसपैठ के साथ ही उत्तर में ग्वालियर तक उनके अभियानों के संदर्भ भी हैं। सत्रहवीं शताब्दी के मुग़ल भारत के रीति-रिवाज़ों और परंपराओं के बारे में मनुची की टिप्पणियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं, ग्वालियर घराने की संगीत परंपराओं पर मनुची की जानकारी, पारसी समुदाय की धार्मिक मान्यताओं, मुग़ल भारत के फलते-फूलते वाणिज्यिक केंद्र के रूप में सूरत के वर्णन, सत्रहवीं शताब्दी में अकबर के उदारवादी दृष्टिकोण के संबंध में धारणाओं के साथ ही मीना बाज़ार, मुग़ल *हरम*, आदि के संबंध में उसका विवरण तथ्यात्मक और प्रासंगिक प्रतीत होता है। कुछ इतिहासकारों ने मनुची की 'गपशप शैली' और 'बाज़ारू अफ़वाहों' पर निर्भरता के लिए उसकी आलोचना भी की है। सुब्रह्मण्यम ने उसे 'पास्युर कल्चरल' (passeur cultural) के रूप में वर्गीकृत किया, जिसका अर्थ है

एक व्यक्ति जो एक सांस्कृतिक परिवेश से दूसरे सांस्कृतिक परिवेश में सहजता से भ्रमण करता है (सुब्रह्मण्यम 2008: 38)।

मनुची ने स्पष्ट रूप से मुग़ल भारत में अपने जीवन और ***जेंटीलों*** (हिंदुओं) के साथ संपर्क को नकारात्मक ढाँचे में परिभाषित किया है, वह यहाँ की स्थिति ग्राह्य नहीं कर पाता है। वह लिखता है:

> .... अगर भगवान की कृपा से मुझे वहाँ कुछ अच्छी किस्मत चमकाने का अवसर मिला भी था, तो भी मैं वहाँ कभी बसना नहीं चाहता था, क्योंकि वास्तव में उनके पास किसी यूरोपीय व्यक्ति के मन को आनंद देने वाली या प्रभावित करने वाली चीजें नहीं हैं कि वहाँ रहा जाए, क्योंकि वे न तो शरीर के लिए अच्छे हैं, और आत्मा के लिए तो और भी कम: शरीर के लिए, क्योंकि वहाँ लगातार सतर्क रहना ज़रूरी है क्योंकि आपको ऐसे लोग नहीं मिलेंगे जिनकी बात पर भरोसा किया जा सकता है और जो कुछ भी कहा जाता है उस सब कुछ को संदेह से देखना चाहिए और उससे उल्टा ही समझना चाहिए, जैसा कहा गया हो, क्योंकि वे लोग पूर्ण रूप से ऐसा व्यवहार करते हैं जैसा कि मेरे देश में कहा जाता है: अच्छे शब्द और दुखद कार्य बुद्धिमान और मूर्ख व्यक्ति को समान रूप से गुमराह करते हैं। इसलिए, जब वे आपके सर्वाधिक प्रिय मित्र होने का दावा करते हैं, तो दोगुनी सावधानी दिखाने की आवश्यकता है। यह आत्मा के लिए अच्छा नहीं है, दोनों कारणों से, एक तो जिस तरह का स्वतंत्र आचरण वे करते हैं, और दूसरा कैथोलिक अनुकरण की कमी के कारण, और इसलिए जब मैं वहाँ से निकल सकता था, तो मैंने ऐसा किया, और मैं वहाँ कभी नहीं लौटा, जब तक किसी आवश्यकतावश ऐसा करना न पड़ा हो ...
>
> **सुब्रह्मण्यम 2008: 61**

तीसरा भाग, जिसमें अधिकांश खंडों को 'भारत के *जेंटीलों* (हिंदुओं) के क्या विश्वास हैं और ईश्वर के संबंध में उनकी धारणाओं के सार पर संक्षिप्त जानकारी' शीर्षक के तहत वर्णित किया गया है और यह भाग ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) की विस्तृत चर्चा से शुरू होता है। हालांकि, यही खंड लोगों भारतीयों के रीति-रिवाज़ों और शासन व्यवस्था का वर्णन करने की ओर मुड़ जाता है, यह विवरण भारतीयों के बारे में उसकी पक्षपाती, पूर्वाग्रही और पूर्व-निर्धारित धारणा को सामने लाता है। इस संदर्भ में मनुची की टिप्पणियाँ दक्षिण भारत के *नायक* राज्यों की ओर इशारा करती हैं। वह इस खंड को 'उन लोगों के बीच प्रचलित प्रशासन की शैली' के रूप में प्रस्तुत करता है, जो इस प्रकार से है:

> इन *जेन्टीलों* की सरकार सर्वाधिक अत्याचारी और बर्बर है जितनी कि कोई कल्पना कर सकता है, इसका कारण इस तथ्य के अलावा कि सभी राजा विदेशी (एट्रेंजर; etrangers) हैं, वे अपनी प्रजा को दासों से भी बदतर मानते हैं; सभी भूमि राजा की होना, और प्रजा में ऐसा कोई भी न होना है, जिसके पास अपनी भूमि, या विरासत, या किसी प्रकार का अधिकार हो, जिसे वह अपनी संतानों के लिए छोड़ सके।
>
> **सुब्रह्मण्यम 2008: 63**

महिलाओं का निरूपण

मनुची ने हमें मुग़ल *हरम* और मुग़ल राजव्यवस्था पर शक्तिशाली महिलाओं के प्रभाव का विस्तृत विवरण दिया है। वह राजकुमारी जहाँआरा के बारे में लिखता है कि पान पर उसके ख़र्च के लिए सूरत के बंदरगाह के राजस्व के अलावा 30 लाख रुपये की वार्षिक आय निर्धारित थी। इसके अलावा, उसके पास उसके पिता द्वारा दिए गए कई बहुमूल्य रत्न और जवाहरात थे। हाल ही में इतिहासकारों ने उन लैंगिक रूपकों का अन्वेषण किया है जिनमें यूरोपीय यात्रियों के लेखन में महिलाओं का निरूपण किया जा रहा था। चैटर्जी का तर्क है कि यूरोपियन यात्रा-वृत्तांतों में प्रायः हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाओं के मध्य कथित अंतर धुँधला दिखाई देता है।

चटर्जी, टेल्शर के इस सुझाव पर टिप्पणी करते हुए कि आरम्भिक यूरोपीय निरूपणों में शास्त्रीय साहित्यिक ढाँचे का उपयोग *सती* को एक दृढ़ और साहसी नायिका के रूप में चित्रित करने के लिए अपनाया गया था, का तर्क है कि, यात्रा-वृत्तांत/लेखक सती को हमेशा ही शास्त्रीय नायिका से संबंधित करके नहीं देखते हैं; इस घटना का वर्णन करने के और भी कई तरीके हैं, *सती* की परम्परा की निंदा करते हुए, यात्री *सती* के विचित्र व्यवहार पर गम्भीर संदेह भी प्रकट करते हैं। जैसा कि मनुची के विवरण में देखा जा सकता है। चैटर्जी का तर्क है कि *सती* के इस कृत्य में महिला की स्वतंत्र इच्छा हमेशा से सवालों के घेरे में रही है, यदि उसे नकारा न भी गया हो तो। 'एक ही यात्रा-वृत्तांत/लेखक (यहाँ, मनुची) के आख्यान के भीतर, हम विभिन्न रूपकों को देख सकते हैं जिनका उपयोग *सती* को चित्रित करने के लिए किया जाता है' (चटर्जी 2013: 72)। मनुची विधवा के साहस की प्रशंसा करते हुए *सती* का वर्णन शुरू करता है और फिर यह विवरण संत्रास में बदल जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी में मुग़लों और भारतीय उपमहाद्वीप के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के बारे में यूरोपीय दृष्टिकोण को समझने के लिए मनुची का विशाल लेखन-कार्य बहुत महत्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न-7

1) मनुची अन्य यूरोपीय यात्रियों से किस प्रकार भिन्न था?

....

....

....

2) मनुची के सती के वर्णन की विवेचना कीजिए।

....

....

....

16.9 सारांश

इस इकाई में हमने भारत आए यूरोपीय यात्रियों के लेखनों की चर्चा की है, जिसकी शुरुआत में निकितिन की चर्चा की गई है, जो पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत में रूस से भारत आया था और अंत में इतालवी यात्री निकोलो मनुची की चर्चा है, जिसका लेखन अठारहवीं शताब्दी की बिल्कुल शुरुआत में सामने आया। इन शताब्दियों के बीच भारतीय राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवेश में व्यापक बदलाव आ रहे थे, वहीं यह काल यूरोप से आने वाली व्यापारिक कम्पनियों के भारतीय परिदृश्य में उदय का समय था। कुछ यात्री इन कम्पनियों से जुड़े थे, पायस, नूनिज़, तथा टॉमस रो; कुछ स्वतंत्र व्यापारी थे, जैसे टैवर्नियर; वहीं कुछ स्वतंत्र अन्वेषक थे और उनका संबंध यूरोप में हो रहे नवीन बौद्धिक विकासक्रम से था, जैसे बर्नियर। मनुची जैसी अलग शख़्सियत भी थी। इनके वर्णनों को जहाँ इनकी निजी और राजनीतिक परिस्थितियों ने प्रभावित किया, वहीं इस अनजाने देश के माहौल ने इनके भीतर अचम्भा पैदा किया और कई बार डर भी। स्वयं की धार्मिक श्रेष्ठता के भाव के साथ ही अधिकांश विदेशी यात्रियों की भारतीय भाषाओं से अज्ञानता ने कई बार भारतीय संस्कृति और विश्वासों के संबंध में उनके अवलोकन को संकीर्णता से भर दिया। भारत में राजनीतिक सत्ता के स्वरूप के संबंध में उन्होंने ऐसी छवियाँ (एशियाटिक निरंकुशतावाद, भूमि पर निजी स्वामित्व का अभाव, और नैतिक रूप से भ्रष्ट धार्मिक-सामाजिक परम्पराएँ) गढ़ीं, जिनका यूरोप में भारत-संबंधी ज्ञान के सृजन में भरपूर इस्तेमाल हुआ, मांटेस्क्यू से लेकर मार्क्स तक ने अपने सैद्धांतीकरण में इसका उपयोग किया। यद्यपि कई मामलों में इन यूरोपीय यात्रियों के वर्णन भारतीय अतीत के उन हिस्सों को दर्ज करते हैं, जिन्हें या तो तयशुदा मानकर नज़रंदाज़ कर दिया गया है, या फ़ारसी *तारीख़ों* के दरबारी लेखन में उनकी असंभावना थी, उदाहरणार्थ, भारत के निचले तबकों की जीवन शैलियाँ, मुग़ल *हरम* जीवन, आर्थिक उत्पादन की पद्धतियाँ और उनका वितरण, इत्यादि। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इनके अध्ययन में उनके पक्षपातों, पूर्वाग्रहों और निजी सीमाओं का ध्यान रखा जाए।

16.10 शब्दावली

जेंटील — इस शब्द का प्रयोग यूरोपियों द्वारा उन भारतीयों का संकेत करने के लिए किया जाता था, जो मुस्लिम नहीं थे

सीमित संघर्ष — संजय सुब्रह्मण्यम ने इस व्यंजक का प्रयोग मोटे तौर पर 1500 से 1750 के बीच यूरोपीय तथा एशियाई (विशेष रूप से भारतीय) लोगों के बीच अंतःक्रिया की विशेषता बताने के लिए किया है। यह एक ऐसा काल था, जिसमें यूरोपियों द्वारा, क्रूरता के साथ और सचेतन ढंग से, एशिया और इसके लोगों पर आधिपत्य जमाने के बजाय एशियाई तथा यूरोपियों के बीच महत्वपूर्ण सहयोग का साक्षी था

नरसिंह या बिसनाग का राज्य	पुर्तगाली यात्री विजयनगर राज्य को नरसिंह का राज्य (जो सालुव नरसिंह का संकेत करता था जिसने संगम वंश से सत्ता का हरण किया था) कहते थे; बिसनाग शब्द की उत्पत्ति विजयनगर से हुई थी
एशियाटिक निरंकुशतावाद	निरंकुश सरकार का एक विशेष दमनकारी रूप, विशेष रूप से, पूर्व-आधुनिक एशियाई राजव्यवस्था के साथ इसकी पहचान की जाती है, बर्नियर के विवरण ने, विशेष रूप से, मुग़ल राज्य की एक छवि बनाई जो प्राच्य निरंकुशता की मिसाल थी। बाद में, यूरोपीय बुद्धिजीवियों ने पूर्व-आधुनिक भारतीय राजनीति की व्याख्या करने के लिए इन यात्रा विवरणों का उपयोग किया
सती	एक हिंदू विधवा द्वारा अपने पति की चिता पर स्वयं को भस्मीभूत कर देने की प्रथा। *सती* का वर्णन अधिकांश यूरोपीय यात्रा-वृत्तांतों की एक नियमित विशेषता थी। न केवल इस कृत्य या प्रथा ने महिला के स्वैच्छिक कर्ता होने संबंधी विमर्श को प्रभावित किया, बल्कि यह धारणा भी पैदा की कि हिंदू धार्मिक प्रथाएँ कठोर हैं

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 16.2.1, भारत और यहाँ के निवासी
2) देखें उप-भाग 16.2.2, नगर तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 16.3.1
2) देखें उप-भाग 16.3.2
3) देखें उप-भाग 16.3.1 और 16.3.2
4) देखें उप-भाग 16.3.1 तथा 16.3.2

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 16.4, जहाँगीर के *दरबार* का वर्णन
2) देखें भाग 16.4

बोध प्रश्न-4

1) देखे भाग 16.5
2) देखे भाग 16.5, इस भाग का अंतिम उद्धरण

बोध प्रश्न-5

1) देखे भाग 16.6, उन मार्गों और व्यापारिक केंद्रों का उल्लेख करें जहाँ वह गया था
2) देखे भाग 16.6, मंदिरों और पुरोहितों के संबंध में उसके मत

बोध प्रश्न-6

1) देखे भाग 16.7, निरंकुश मुग़ल
2) देखे भाग 16.7, निजी सम्पत्ति का अभाव

बोध प्रश्न-7

1) देखे भाग 16.8
2) देखे भाग 16.8, महिलाओं का निरूपण

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

16.11 संदर्भ ग्रंथ

बनर्जी, रीता, (2017) 'थॉमस रो एंड टू कोर्ट्स ऑफ़ एम्परर जहाँगीर एंड किंग जेम्स', *एट्यूड्स आंग्ले,* 70ः 147-166; 10-3917/etan-702-0147.

बेकलोव, ग्रेगरी, (1950) *द जर्नी बियांड थ्री सीज़ ऑफ़ अफ़नासीज निकितिन, 1466-1472* (न्यूयार्कः ब्रिटिश कोलंबिया यूनिवर्सिटी).

बर्नियर, फ्रंस्वा, (1914) *ट्रैवल्ज़ इन द मुग़ल एम्पायर; सी ई 1656-1708* (आर्चिबाल्ड कांस्टेबल (1891) द्वारा अनुवादित और एनोटेट, विन्सेंट ए स्मिथ द्वारा संशोधित) (ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

चटर्जी, पी, (2012) 'जेंडर एंड ट्रैवल राइटिंग इन इंडिया, *c*. 1650-1700', *सोशल साइंटिस्ट,* 40 (3/4), 59-80.

चिदा-रज़वी, मेहरीन, (2014) 'द परसेप्शन ऑफ़ रिसेप्शनः द इम्पॉर्टन्स ऑफ़ थॉमस रो एट द मुग़ल कोर्ट ऑफ़ जहाँगीर', *जर्नल ऑफ़ वर्ल्ड हिस्ट्री,* 25ः 263-284.

इरविन, डब्ल्यू, (1903) 'नोट्स ऑन निकोलाओ मनुची एंड हिज़ "स्टोरिया डू मोगोर"', *जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड,* पृ. 723-733.

कालरा, सिद्धांत, (2014) 'बर्नियर ट्रैवल्ज़ टू इंडिया'; https://www.researchgate. net/publication/ 292615870

मनूची, निकोलो, (1907-08) *मोगुल इंडिया, या स्तोरिया डो मोगोर,* विलियम इर्विन द्वारा अनुवादित, 4 भाग (लंदनः जॉन मरे).

पेल्सार्ट, फ्रांसिस्को, (1925) *जहाँगीर'स इंडियाः द रेमोंस्ट्रांत ऑफ़ पेल्सार्ट,* डब्ल्यू. एच. मोरलैंड तथा पी. गेल द्वारा अनुवादित (कैम्ब्रिजः डब्ल्यू. हेलर एंड संस).

रो, थॉमस, (1899) *द एम्बेसी ऑफ़ सर थॉमस रो, द कोर्ट ऑफ़ द ग्रेट मोगुल, 1615-1619. एज़ नैरेटेड इन हिज़ जर्नल एंड कॉरेस्पॉडेन्स,* विलियम फ़ॉस्टर, संपा., दो भाग (लंदनः हम्फ्री मिलफोर्ड).

सीवेल, आर., (1900 [1991]) *ए फॉरगॉटन एम्पायरः विजयनगर, क्रॉनिकल्स ऑफ पेस एंड नुनिज* (दिल्लीः एशियन एजुकेशनल सर्विसेज).

श्लापेंटोख, दिमित्री, (2012) 'अफानसी निकिति'स वॉयजज़ बीआंड थ्री सीज़ः ऐन ऑर्थोडॉक्स रशियन इन मिडीवल इंडिया', *ओरियंस,* 40, पृ. 169-190.

सुब्रह्मण्यम, एस., (2008) 'फ़र्दर थॉट्स ऑन एन इनिग्माः द टोर्चरस लाइफ़ ऑफ़ निकोलो मनुची, 1638-*c*.1720', *द इंडियन इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू,* 45(1), 35-76.

सुब्रह्मण्यम, एस., (2017) *यूरोप'स इंडियाः वड्र्ज़, पीपल, एम्पायअर, 1500-1800* (कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्सः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

तांबिया, एस. जे., (1998) 'व्हाट डिड बर्नियर ऐक्चूअली से? प्रोफ़ायलिंग द मुग़ल एम्पायर', *कॉन्ट्रिब्यूशन टू इंडियन सोशोलोज़ी,* 32 (2), 361-386.

टैवर्नियर, जीन बैप्टिस्ट, (1977 [1925]) *ट्रैवल्ज़ इन इंडिया,* वी. बॉल, अनुवादित, डब्ल्यू-क्रुक, संपा., दो भाग (दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिकेशर्स).

टेल्शर, केट, (1997) *इंडिया इंस्क्राइब्डः यूरोपियन एंड ब्रिटिश राइटिंग ऑन इंडिया, 1600-1800* (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

वनीना, यूजेनिया, (2013) 'रोड्ज़ ऑफ़ मिसंडर्स्टैंडिंगः यूरोपियन ट्रैव्लर्ज़ इन इंडिया (फ़िफ़्टीन्थ टू सेवेंटीन्थ सेंचरी)', *द इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू,* 40.

16.13 शैक्षणिक वीडियो

मुग़ल हिस्टोरियोग्राफ़ी एंड सोर्सेज़-III

https://www.youtube.com/watch?v=DQzm9h0gXAI